संतबानी

संतबानी पुस्तक-माला के छापने का अभिप्राय जगत-प्रसिद्ध महात्माओं की बानी और उपदेश को जिन का लोप होता जाता है बचा लेने का है। जितनी बानियाँ हमने छापी हैं उनमें से विशेष तो पहिले छपी ही नहीं थीं और जो छपी थीं सो ऐसे छिन्न भिन्न और बेजोड़ रूप में या क्षेपक और त्रुटि से भरी हुई कि उन से पूरा लाभ नहीं उठ सकता था।

हमने देश देशान्तर से बड़े परिश्रम और व्यय के साथ हस्तलिखित दुर्लभ ग्रंथ या फुटकल शब्द जहाँ तक मिल सके असल या नक़ल कराके मँगवाये। भर सक तो पूरे ग्रंथ छापे गये हैं और फुटकल शब्दों की हालत में सर्व साधारन के उपकारक पद चुन लिये हैं। कोई पुस्तक बिना दो लिपियों का मुक़ाबला किये और ठीक रीति से शोधे नहीं छापी गई है, और कठिन और अनूठे शब्दों के अर्थ और संकेत फ़ुट नोट में दे दिये हैं। जिन महात्मा की बानी है, उनका जीवन चरित्र भी साथ ही छापा गया है, और जिन भक्तों और महापुरुषों के नाम किसी बानी में आये हैं उनके वृत्तान्त और कौतुक संक्षेप से फ़ुट नोट में लिख दिये गये हैं।

दो अन्तिम पुस्तकें इस पुस्तक-माला की अर्थात् "संतबानी संग्रह" भाग १ (साखी) और भाग २ (शब्द) छप चुकीं, जिनका नमूना देख कर महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी बैकुंठबासी ने गदगद होकर कहा था—"न भूतो न भविष्यति"

एक अनूठी और अद्वितीय पुस्तक महात्माओं और विद्वानों के बचनों की "लोक परलोक हितकारी" नाम की गद्य में सन् १९१९ में छपी है, जिसके विषय में श्रीमान महाराजा काशी नरेश ने लिखा है—"यह उपकारी शिक्षाओं का अचरजी संग्रह है, जो सोने के तोल सस्ता है"।

पाठक महाशयों की सेवा में प्रार्थना है कि इस पुस्तक-माला के जो दोष उनकी दृष्टि में आवें उन्हें हमको कृपा करके लिख भेजें जिससे वह दूसरे छापे में दूर कर दिये जावें।

हिन्दी में और भी अनूठी पुस्तकें छपी हैं जिन में प्रेम कहानियों के द्वारा शिक्षा बतलाई गई हैं। उनके नाम और दाम इस पुस्तक के पीछे सूचीपत्र में देखिये। अभी हाल में कबीर बीजक भी छापी गई है जिसका दाम ॥।) है।

हमने 'मनोरमा' नामक सचित्र मासिक पत्रिका भी निकालना आरम्भ कर दिया है। साहित्य सेवा के साथ ही साथ मनोरञ्जक लेख कहानियाँ और ऐसे महात्माओं के कवित्त दोहे सवैये जो स्फुट हैं और पुस्तक के रूप में नहीं निकाली जा सकती निरंतर छपती हैं। वार्षिक मूल्य ५) और छः माही ३) है।

भक्तशिरोमणि

मनेजर, बेलवेडियर छापाख़ाना,

अकबर सन् १९२९ ई०   इलाहाबाद

निवेदन

(सन् १९१२)

कबीर साहिब के इस अनमोल ग्रंथ के छापने के लिये बहुत दिन से हमारी अभिलाषा और मित्रों का तगादा था पर अब तक उसका पूरा मसाला इकट्ठा न होने के कारन हम न छाप सके। चार बरस हुए हमको बाबा जुगलानंद कबीर-पंथी भारत-पथिक की एक पुस्तक लखनऊ के (संवत १९५५ के) छापे की मिली थी पर वह इतनी अशुद्ध और छेपक से भरी हुई थी कि जब तक और लिपि हाथ न आवै जिससे त्रुटियों की शुद्धि की जावै उससे पूरा मतलब नहीं निकल सकता था। फिर भी हमको उससे बहुत मदद मिली जिसके लिये हम उक्त महाशय को अनेक धन्यबाद देते हैं। संत संग्रह के प्रथम भाग में भी कबीर साहिब की साखियाँ हैं जो यद्यपि संख्या में कम हैं पर चुनी हुई और बड़ी शुद्धता के साथ छपी हैं और थोड़े दिन हुए हमारे मित्र बाबू सरजूप्रसाद मुआफ़ीदार तेरही ज़िला बाँदा और साधू साहिबदास जी वेस्ट कोस्ट डेमरारा निवासी ने दो मोटी पुस्तकें कबीर साहिब के उत्तम साखियों और पदों की कृपा करके हमको भेजीं जिनसे साखियों के चुनने और बाबा जुगलानंद जी की पुस्तक की साखियों के सोधने में बहुत मदद मिली।

अनेक साखियाँ लखनऊ की छपी हुई पुस्तक और लिपियों में भी दो दो तीन तीन बार भिन्न भिन्न अंगों में दी हुई थीं इनको छाँट कर निकाल देने मे बड़ा परिश्रम हुआ और फिर भी यह कठिन है कि हमारी पुस्तक में कोई साखी भूल से दो बार नहीं छपी है। पर जहाँ तक बन सका इस पुस्तक में उत्तमोत्तम और शुद्ध साखियाँ रक्खी गई हैं जो दोष रह गये हों उन्हें प्रेमी जन छिमा की दृष्टि से देखें और कृपा करके हमको जता दें जिसमें दूसरे छापे में वह ठीक कर दिये जायँ।

कबीर साहिब का जीवन-चरित्र बिस्तार के साथ उनकी शब्दावली के पहले भाग में दिया गया है इसलिये यहाँ फिर छापने की आवश्यकता नहीं है।

जो साखियाँ पहिले छापे में कहीं दुबारा या अशुद्ध छपी थीं वह इस नये छापे मे ठीक कर दी गई हैं और टिप्पनी की भी यथा शक्ति जहाँ तहाँ शुद्धि कर दी गई है।

प्रयाग,
अक्टूबर १९२६

अधम —
एडिटर, संतबानी पुस्तकमाला।

सूचीपत्र अंगों का

॥ भाग १ ॥

॥ भाग २ ॥

कबीर साहिब का साखी-संग्रह

[भाग १]

गुरुदेव का अंग

गुरु को कीजै दंडवत, कोटि कोटि परनाम ।
कीट न जानै भृङ्ग को, वह कर ले आप समान ॥१॥
जगत जनायो जेहि सकल, सो गुरु प्रगटे आय ।
जिन गुरु[1] आँखि न देखिया, सो गुरु[2] दिया लखाय ॥२॥
सतगुरु सम को है सगा, साधू सम को दात ।
हरि समान को हितू है, हरिजन सम को जात ॥३॥
सतगुरु की महिमा अनँत, अनँत किया उपकार ।
लोचन अनँत उघारिया, अनँत दिखावनहार ॥४॥
जेहि खोजत ब्रह्मा थके, सुर नर मुनि अरु देव ।
कहै कबीर सुन साधवा, कर सतगुरु की सेव ॥५॥
कबीर गुरु गरुआ मिला, रल[3] गया आटे लोन ।
जाति पाँति कुल मिटि गया, नाम धरैगा कौन ॥६॥
ज्ञान-प्रकासी गुरु मिला, सो जन बिसरि न जाय ।
जब साहिब किरपा करी, तब गुरु मिलिया आय ॥७॥
गुरु साहिब करि जानिये, रहिये सब्द समाय ।
मिले तो दंडवत बंदगी, पल पल ध्यान लगाय ॥८॥

---

(१) गुरु के निज रूप से अभिप्राय है। (२) देहधारी रूप गुरु का है।
(३) मिल।

गुरु को सिर पर राखिये, चलिये आज्ञा माहिँ।
कहै कबीर ता दास को, तीन लोक डर नाहिँ ॥९॥

गुरु गोबिँद दोऊ खड़े, का के लागौँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोबिँद दियो बताय॥१०॥

बलिहारी गुरु आपने, घड़ि घड़ि सौ सौ बार।
मानुष से देवता किया, करत न लागी बार ॥११॥

लाख कोस जो गुरु बसैं, दीजै सुरत पठाय।
सबद तुरी असवार है, पल पल आवै जाय ॥१२॥

जो गुरु बसैँ बनारसी, सिष्य समुंदर तीर।
एक पलक बिसरै नहीं, जो गुन होय सरीर ॥१३॥

सब धरती कागद करूँ, लेखनि सब बनराय।
सात समुँद की मसि करूँ, गुरु गुन लिखा न जाय ॥१४॥

बूड़ा था पर ऊबरा, गुरु की लहरि चमक्क।
बेड़ा देखा झाँझरा, ऊतरि भया फरक्क॥१५॥

पहिले दाता सिष भया, जिन तन मन अरपा सीस।
पाछे दाता गुरु भये, जिन नाम दिया बकसीस॥१६॥

सत्त नाम के पटतरे, देवे को कछु नाहिँ।
क्या लै गुरु संतोषिये, हवस रही मन माहिँ ॥१७॥

मन दीया तिन सब दिया, मन की लार[1] सरीर।
अब देवे को कछु नहीं, यों कह दास कबीर ॥१८॥

तन मन दिया तो भल किया, सिर का जासी भार ॥
कबहूँ कहै कि मैं दिया, घनी सहैगा मार १९॥

तन मन ता को दीजिये, जा के बिषया नाहिँ।
आपा सबही डारि कै, राखै साहिब माहिँ ॥२०॥

---

(१) साथ।

तन मन दिया तो क्या हुआ, निज मन दिया न जाय।
कहै कबीर ता दास से, कैसे मन पतियाय ॥२१॥
तन मन दीया आपना, निज मन ता के संग।
कहै कबीर निरभय भया, सुन सतगुरु परसंग ॥२२॥
निज मन तो नीचा किया, चरन कँवल की ठौर।
कहै कबीर गुरुदेव बिन, नजर न आवै और ॥२३॥
गुरु सिकलीगर कीजिये, मनहिं मस्कला[1] देइ।
मन का मैल छुड़ाइ कै, चित दरपन करि लेइ ॥२४॥
सिष खाँडा गुरु मस्कला, चढ़ै नाम खरसान[2]।
सबद सहै सन्मुख रहै, तो निपजै सिष्य सुजान॥२५॥
गुरु धोबी सिष कापड़ा, साबुन सिरजनहार।
सुरति सिला पर धोइये, निकसै जोति अपार॥२६॥
गुरु कुम्हार सिष कुंभ[3] है, गढ़ गढ़ काढ़ै खोट।
अंतर हाथ सहार दै, बाहर बाहै[4] चोट ॥२७॥
सतगुरु महल बनाइया, प्रेम गिलावा दीन्ह।
साहिब दरसन कारने, सबद झरोखा कीन्ह ॥२८॥
गुरु साहिब तो एक हैं, दूजा सब आकार।
आपा मेटै गुरु भजे, तब पावै करतार ॥२९॥
ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति विस्वास।
गुरु सेवा तें पाइये, सतगुरु[5] चरन निवास॥३०॥
गुरु मानुष करि जानते, ते नर कहिये अंध।
महा दुखी संसार में, आगे जम के बंध ॥ ३१ ॥
गुरु मानुष करि जानते, चरनामृत को पानि।
ते नर नरके जाइँगे, जन्म जन्म ह्वै स्वान ॥३२॥

---

(१) सिकली करने का औज़ार। (२) सान। (३) घड़ा। (४) लगाता है (५) सत्य पुरुष।

कबीर ते नर अंध हैं, गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर ॥ ३३॥
गुरु हैं बड़ गोविंद तें, मन में देखु विचार।
हरि सुमिरै सो वार है, गुरु सुमिरै सो पार ॥३४॥
गुरु सीढ़ी तें ऊतरै, सबद विहूना होय।
ता को काल घसीटि है, राखि सकै नहिं कोय॥३५॥
अहं अगिन निसि दिन जरै, गुरु से चाहै मान।
ता को जम न्योता दियो, होउ हमार मिहमान ।३६॥
गुरु से भेद जो लीजिये, सीस दीजिये दान।
बहुतक भोंदू बहि गये, राखि जीव अभिमान ।३७॥
गुरु समान दाता नहीं, जाचक सिष्य समान।
तीन लोक की सम्पदा[1], सो गुरु दीन्हा दान ॥३८॥
जम गरजे बल बाघ के, कहै कबीर पुकार।
गुरु किरपा ना होत जो, तौ जम खाता फार ।३९॥
गुरु पारस गुरु परस है, चंदन बास सुबास।
सतगुरु पारस जीव को, दीन्हा मुक्ति निवास ॥४०॥
अबरन बरन अमूर्त जो, कहो ताहि किन पेख।
गुरू दया तें पावई, सुरत निरत करि देख ॥४१॥
पंडित पढ़ि गुनि पचि मुए, गुरु बिन मिलै न ज्ञान।
ज्ञान बिना नहिं मुक्ति है, सत्त सबद परमान ॥४२॥
मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पुजा गुरु पाँव।
मूल नाम गुरु बचन है, मूल सत्य सत भाव ॥४३॥
कहै कबीर तजि भरम को, नन्हा ह्वै के पीव।
तजि[2] अहं गुरु चरन गहु, जम से बाचै जीव ॥४४॥

---

(१) दौलत। (२) तज या छोड़ कर।

तीन लोक नौ खंड मैं, गुरु तैं बड़ा न कोइ ।
करता करै न करि सकै, गुरू करै सो होइ ॥४५॥
कबिरा हरि के रूठते, गुरु के सरने जाइ ।
कहै कबीर गुरु रूठते, हरि नहिं होत सहाय ॥४६॥
गुरु की आज्ञा आवई, गुरु की आज्ञा जाय ।
कहै कबीर सो संत है, आवा गवन नसाय ॥४७॥
थापन[1] पाई थिर भया, सतगुरु दीन्ही धीर ।
कबीर हीरा बनिजिया[2], मानसरोवर तीर ॥४८॥
कबीर हीरा बनिजिया, हिरदै प्रगटी खानि ।
सत्त पुरुष किरपा करी, सतगुरु मिले सुजान ॥४९॥
निस्चय निधी मिलाय तत्त, सतगुरु साहस धीर ।
निपजी मैं साझी घना, बाँटनहार कबीर ॥५०॥
कबीर बादल प्रेम को, हम पर बरस्यो आय ।
अंतर भींजी आतमा, हरो भयो बनराय ॥५१॥
सतगुरु के सदके[3] किया, दिल अपने को साच ।
कलजुग हम से लरि परा, मुहकम[4] मेरा बाँच ॥५२॥
साचे गुरु की पच्छ मैं, मन को दे ठहराय ।
चंचल तैं निःचल भया, नहिं आवै नहिं जाय ॥५३॥
भली भई जो गुरु मिले, नातर होती हान ।
दीपक जोति पतंग ज्यौं, परता आय निदान ॥५४॥
भली भई जो गुरु मिले, जा तैं पाया ज्ञान ।
घटही माहिँ चबूतरा, घटही माहिँ दिवान ॥५५॥
गुरू मिला तब जानिये, मिटै मोह तन ताप ।
हर्ष सोक ब्यापै नहीं, तब गुरु आपै आप ॥५६॥

---

(१) स्थिति यानी ठहराव । (२) बनिज किया या लादा । (३) न्योछावर । (४) परवाना ।

गुरू तुम्हारा कहाँ है, चेला कहाँ रहाय।
क्यौं करिके मिलना भया, क्यौं बिछुड़े आवे जाय ॥५७॥
गुरू हमारा गगन में, चेला है चित माहिं।
सुरत सब्द मेला भया, बिछुड़त कबहूँ नाहिं। ५८॥
वस्तु कहीं ढूँढ़े कहीं, केहि बिधि आवै हाथ।
कहै कबीर तब पाइये, जब भेदी लीजे साथ ॥५९॥
भेदी लीन्हा साथ कर, दीन्ही वस्तु लखाय।
कोटि जनम का पंथ था, पल में पहुँचा जाय ॥६०॥
जल परमानै माछरी, कुल परमावै बुद्धि।
जा को जैसा गुरु मिलै, ता को तैसी सुद्धि ॥६१॥
यह तन बिष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलैं, तौ भी सस्ता जान ॥६२॥
चेतन चौकी बैठ करि, सतगुरु दीन्ही धीर।
निरभय है निःसंक भजु, केवल नाम कबीर ॥६३॥
बहे बहाये जात थे, लोक बेद के साथ।
पैंड़े में सतगुरु मिले, दीपक दीन्हा हाथ ॥६४॥
दीपक दीन्हा तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहना[1], बहुरि न आवै हट्ट[2] ॥६५॥
चौपड़ माड़ी चौहटे, सारी[3] किया सरीर।
सतगुरु दाँव बताइया, खेलै दास कबीर ॥६६॥
ऐसा कोई ना मिला, सत्त नाम का मीत।
तन मन सौंपै मिरग ज्यौं, सुनै बधिक का गीत ॥६७॥
ऐसे तो सतगुरु मिले, जिन से रहिये लाग।
सब ही जग सीतल भया, जब मिटी आपनी आग ॥६८॥

---

(१) खरीदारी। (२) बाज़ार। (३) पासा।

सतगुरु हम से रीझि कै, एक कहा परसंग।
बरसा बादल प्रेम का, भींजि गया सब अंग ॥६९॥

सतगुरु के उपदेस का, सुनियो एक बिचार।
जो सतगुरु मिलता नहीं, जाता जम के द्वार ॥७०॥

जम द्वारे पर दूत सब, करते खैंचा तान।
तिन तें कबहुँ न छूटता, फिरता चारो खानि ॥७१॥

चार खानि मैं भरमता, कबहुँ न लहता पार।
सो तो फेरा मिटि गया, सतगुरु के उपकार ॥७२॥

जरा[1] मीच[2] ब्यापै नहीं, मुवा न सुनिये कोय।
चलु कबीर वा देस मैं, जहँ बैदा सतगुरु होय ॥७३॥

काल के माथे पाँव दे, सतगुरु के उपदेस।
साहिब अंक[3] पसारिया, लै चला अपने देस ॥७४॥

सतगुरु साचा सूरमा, सब्द जो बाहा[4] एक।
लागत हो भय मिटि गया, पड़ा कलेजे छेक ॥७५॥

सतगुरु साचा सूरमा, नख सिख मारा पूर।
बाहर घाव न दीसई, भीतर चकनाचूर ॥७६॥

सतगुरु सब्द कमान करि, बाहन लागा तीर।
एक जो बाहा प्रेम से, भीतर बिधा सरीर ॥७७॥

सतगुरु बाहा बान भरि, धर कर सूधी मूठ।
अंग उघारे लागिया, गया धुवाँ सा फूट ॥७८॥

सतगुरु मेरा सूरमा, बेधा सकल सरीर।
बान धुवाँ सा फूटिया, क्यों जीवे दास कबीर ॥७९॥

सतगुरु मारा बान भरि, निरखि निरखि निज ठौर।
नाम अकेला रहि गया, चित्त न आवै और ॥८०॥

---

(१) वृद्ध अवस्था। (२) मौत। (३) अँकवार यानी दोनों हाथ। (४) चलाया।

कर कमान सर साधि के, खैंचि जो मारा माहिं।
भीतर बिंधै सो मरि रहै, जिवै पै जीवै नाहिं ॥८१॥

जबही मारा खैंचि के, तब मैं मूआ जानि।
लगी चोट जो सबद की, गई कलेजे छानि ॥८२॥

सतगुरु मारा बान भरि, डोला नाहिं सरीर।
कहु चुम्बक क्या करि सकै, सुख लागे वोहि तीर ॥८३॥

सतगुरु मारा तान कर, सबद सुरंगी बान।
मेरा मारा फिर जिये, तो हाथ न गहूँ कमान ॥८४॥

ज्ञान कमान औ लव गुना[१], तन तरकस मन तीर।
भलका[२] बहै तत सार का, मारा हदफ[३] कबीर ॥८५॥

कड़ी कमान कबीर की, धरी रहै चौगान।
केते जोधा पचि गये, खींचैं संत सुजान ॥८६॥

लागी गाँसी सुख भया, मरै न जीवै कोय।
कहै कबीर सो अमर भे, जावत मिर्तक होय ॥८७॥

हँसै न बोलै उनमुनी, चंचल मेला मार[४]।
कबीर अंतर बेधिया, सतगुरु का हथियार ॥८८॥

गूँगा हूआ बावरा, बहिरा हूआ कान।
पाँयन से पँगुला हुआ, सतगुरु मारा बान ॥८९॥

सतगुरु मारा बान भरि, टूटि गया सब जेब[५]।
कहुँ आपा कहुँ आपदा, तसबी कहूँ किताब ॥९०॥

सतगुरु मारा प्रेम से, रहो कटारी टूट।
वैसी अनी न सालही, जैसी सालै मूठ[६] ॥९१॥

---

(१) कमान की डोर। (२) गाँसी। (३) निशाना। (४) चंचल यानी मन को मार के हटा दिया और उनमुनी दशा प्राप्त हुई। (५) ज़ेबाइश, साज़ सामान। (६) अनी अर्थात नोक कटारी का जो टूट कर हृदय में रह गई वह इतना कष्ट नहीं देती है जितना मूठ का बाहर रह जाना, याना प्रेम कटारी समूची क्यों न घुस गई।

सतगुरु मारा बान भरि, निरखि निरखि निज ठौर।
अलख नाम में रमि रहा, चित्त न आवै और ॥९२॥
मान बड़ाई ऊरमी[1], ये जग का व्यवहार।
दास गरीबी बंदगी, सतगुरु का उपकार ॥९३॥
दिल ही में दीदार है, बाद बहै संसार।
सतगुरु सबद का मस्कला, मोहिं दिखावनहार ॥९४॥
दीसै है सो बिनसिहै, नाम धरे सो जाय।
कबीर सोई तत्त गहु, जो सतगुरु दियो बताय ॥९५॥
कुदरत पाई खबर से, सतगुरु दियो बताय।
भँवरा बिलम्यो कमल से, अब कैसे उड़ि जाय ॥९६॥
सत्त नाम छोड़ूँ नहीं, सतगुरु सीख दिया।
अबिनासी को परसि के, आतम अमर भया ॥९७॥
सतगुरु तो ऐसा मिला, ताते लोह लुहार।
कसनी दे कंचन किया, ताय लिया तत सार ॥९८॥
सतगुरु मिलि निरभय भया, रही न दूजी आस।
जाय समाना सबद में, सत्त नाम बिस्वास ॥९९॥
कबीर गुरु ने गम कही, भेद दिया अर्थाय।
सुरत कँवल के अंतरे, निराधार पद पाय ॥१००॥
कुमति कीच चेला भरा, गुरू ज्ञान जल होय।
जनम जनम का मोरचा, पल में डारै धोय ॥१०१॥
घर में घर दिखलाय दे, सो गुरु संत सुजान।
पंच सबद धुनकार धुन, बाजै गगन निसान ॥१०२॥
जाय मिल्यो परिवार में, सुख सागर के तीर।
बरन पलटि हंसा किया, सतगुरु सत्त कबीर ॥१०३॥

---

(१) तरंग (मन की)।

साचे गुरु के पच्छ में, मन को दे ठहराय।
चंचल तें निःचल भया, नहिं आवै नहिं जाय ॥१०४॥
गुरु सिकलीगर कीजिये, ज्ञान मसकला देइ।
मन का मैल छुड़ाइ के, चित दरपन करि लेइ ॥१०५॥
गुरू बतावै साध को, साध कहै गुरु पूज।
अरस परस के खेल में, भई अगम की सूझ ॥१०६॥
चित चोखा मन निर्मला, बुधि उत्तम मति धीर।
सो धोखा विच क्यों रहै, जेहि सतगुरु मिलै कबीर ॥१०७॥
चित चोखा मन निर्मला, दयावंत गंभीर।
सोई उहवाँ विचरई, जेहि सतगुरु मिलै कबीर ॥१०८॥
सतगुरु सत्त कबीर है, संकट पड़ा हजोर[1]।
हाथ जोरि बिनती करूँ, भवसागर के तीर ॥१०९॥
कोटिन चंदा ऊगवैं, सूरज कोटि हजार।
सतगुरु मिलिया बाहिरे, दीसत घोर अँधार ॥११०॥
सतगुरु मोहिं निवाजिया, दीन्हा अम्मर बोल।
सीतल छाया सुगम फल, हंसा करै कलोल ॥१११॥
ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति बिस्वास।
सतगुरु मिलि एकै भया, रही न दूजी आस ॥११२॥
सतगुरु पारस के सिला, देखो सोच बिचार।
आई परोसिन ले चली, दीयो दिया सँवार ॥११३॥
जीव अधम औ कुटिल है, कबहूँ नहिं पतियाय।
ता को औगुन मेटि कै, सतगुरु होत सहाय ॥११४॥
पहिले बुरा कमाइ के, बाँधी बिष की पोट।
कोटि कर्म पल में कटे, जब आया गुरु की ओट ॥११५॥

---

(१) भारी।

सतगुरु बड़े सराफ हैं, परखैं खर अरु खोट।
भवसागर तें निकारि कै, राखैं अपनी ओट ॥११६॥
भवसागर जल बिष भरा, मन नहिं बाँधै धीर।
सबल सनेही गुरु मिला, उतरा पार कबीर ॥११७॥
सतगुरु सब्द जहाज हैं, कोइ कोइ पावै भेद।
समुँद बुंद एकै भया, किस का करूँ निषेद ॥११८॥
सतगुरु बड़े जहाज हैं, जो कोइ बैठै आय।
पार उतारैं और को, अपनो पारस लाय ॥११९॥
बिन सतगुरु बाचै नहीं, फिरि बूड़ै भव माहिं।
भवसागर के त्रास में, सतगुरु पकरैं बाँहिं ॥१२०॥
सतगुरु मिला तो क्या भया, जो मन पाड़ी भोल[1]।
पास बस्त्र ढाँकै नहीं, क्या करै बपुरी चोल[2] ॥१२१॥
जग मूआ बिषधर[3] धरे, कहै कबीर बिचार।
जो सतगुरु को पाइया, सो जन उतरै पार ॥१२२॥

॥ सोरठा ॥

बिन सतगुरु उपदेस, सुर नर मुनि नहिं निस्तरे।
ब्रह्मा बिष्नु महेस, और सकल जिव को गनै ॥१२३॥

॥ साखी ॥

केतिक पढ़ि गुनि पचि मुवा, जोग जज्ञ तप लाय।
बिन सतगुरु पावै नहीं, कोटिन करै उपाय ॥१२४॥

॥ सोरठा ॥

करहु छोड़ कुल लाज, जो सतगुरु उपदेस है।
होय तबै जिव काज, निःचय कै परतीत करु ॥१२५॥

(१) मन में भूल पड़ी। (२) बिचारी चोली। (३) साँप, अर्थात मन और माया।

॥ साखी ॥

अच्छर आदी जगत में, जा कर सब बिस्तार।
सतगुरु दया से पाइये, सत्त नाम निज सार ॥१२६॥

॥ सोरठा ॥

सतगुरु खोजो संत, जीव काज जो चाहहू।
मेटौ भव को अंक, आवागवन निवारहू ॥१२७॥
बिनवै दोउ कर जोर, सतगुरु बंदा-छोर हैं।
पावै नाम कि डोर, जरा मरन भव जल मिटै ।१२८॥
सत्त नाम निज सोय, जो सतगुरु दाया करैं।
और झूठ सब होय, काहे को भरमत फिरै ॥१२९॥

॥ साखी ॥

सतगुरु सरन न आवहीं, फिरि फिरि होय अकाज।
जीव खोय सब जाहिंगे, काल तिहूँ पुर राज ॥१३०॥

॥ सोरठा ॥

जो सत नाम समाय, सतगुरु की परतीत कर।
जम के अमल मिटाय, हंस जाय सतलोक कहँ ॥१३१॥
तत[1] दरसी जो होय, सो सत सार बिचारई।
पावै तत्त बिलोय, सतगुरु के चेला सोई ॥१३२॥
जग भवसागर माहिँ, कहु कैसे बूड़त तरै।
गहु सतगुरु की बाहिँ, जो जल थल रच्छा करैं ॥१३३॥
निज मत सतगुरु पास, जाहि पाय सब सुधि मिलै।
जग तैं रहै उदास, ता कहँ क्योँ नहिँ खोजिये ॥१३४॥

॥ साखी ॥

यह सतगुरु उपदेस है, जो मानै परतीत।
करम भरम सब त्यागि कै, चलै सो भव जल जीति ॥१३५॥

---

(१) तत्व अर्थात सार वस्तु।

सतगुरु तो सत भाव है, जो अस भेद बताय।
धन्य सिष्य धन भाग तेहिं, जो ऐसी सुधि पाय ॥१३६॥
जन कबीर बंदन करै, केहि बिधि कीजै सेव।
वार पार की गम नहीं, नमो नमो गुरु देव ॥१३७॥

झूठे गुरु का अंग।

गुरू मिला ना सिष मिला, लालच खेला दाव।
दोऊ बूड़े धार में, चढ़ि पाथर की नाव ॥१॥
जा का गुरु है आँधरा, चेला निपट निरंध[1]।
अंधे अंधा ठेलिया, दोऊ कूप परंत ॥२॥
जानंता[2] बूझा नहीं, बूझि किया नहिं गौन।
अंधे को अंधा मिला, राह बतावै कौन ॥३॥
कबीर पूरे गुरु बिना, पूरा सिष्य न होय।
गुरु लोभी सिष लालची, दूनी दाझन[3] होय ॥४॥
पूरा सतगुरु ना मिला, सुनी अधूरी सीख।
स्वाँग जती का पहिरि के, घर घर माँगै भीख ॥५॥
गुरू गुरू में भेद है, गुरू गुरू में भाव।
सोई गुरु नित बंदिये, (जो) सबद बतावै दाव ॥६॥
कनफूका गुरु हद्द का, बेहद का गुरु और।
बेहद का गुरु जब मिलै, (तब) लहै ठिकाना ठौर ॥७॥
गुरू किया है देंह का, सतगुरु चीन्हा नाहिं।
भवसागर के जाल में, फिरि फिरि गोता खाहिं ॥७॥
जा गुरु तें भ्रम ना मिटै, भ्राँति[4] न जिव की जाय।
गुरु तो ऐसा चाहिये, देवै सबद लखाय ॥९॥

---

(१) जिसकी आँखें बिलकुल बंद हैं। (२) जानकार, भेदी। (३) तपन। (४) भटका

बंधे को बंधा मिलै, छूटै कौन उपाय।
कर सेवा निरबंध की, पल में लेत छुड़ाय ॥१०॥
झूठे गुरु के पच्छ को, तजत न कीजै बार।
द्वार न पावै सबद का, भटकै बारंबार ॥११॥
कबीर गुरु को गम नहीं, पाहन दिया बताय।
सिष सोधे बिन सेइया, पार न पहुँचै जाय ॥१२॥
बेड़े चढ़िया झाँझरे, भवसागर के माहिँ।
जो छाड़ै तो बाचिहै, नातर बूड़ै माहिँ ॥१३॥
बात बनाई जग ठगा, मन परमोधा नाहिँ।
कहै कबीर मन लै गया, लख चौरासी माहिँ ॥१४॥
नीर पियावत क्या फिरै, घर घर सायर बारि[१]।
तृषावंत जो होइगा, पीवैगा झख मारि ॥१५॥
गुरुआ तो सस्ता भया, पैसा केर पचास।
राम नाम को बेचि के, करै सिष्य की आस ॥१६॥
रासि[२] पराई राखता, घर का खाया खेत।
औरन को परमोधता, मुख में परि गई रेत ॥१७॥
गुरुआ तो घर घर फिरै, दीच्छा हमरी लेहु।
कै बूड़ौ कै ऊबरौ, टका परदनी[३] देहु ॥१८॥
जा का गुरु ग्रेही[४] अहै, चेला ग्रेही होय।
कीच कीच को धोवते, दाग न छूटै कोय ॥१९॥
गुरू नाम है ज्ञान का, सिष्य सीख ले सोइ।
ज्ञान मरजाद जाने बिना, गुरु अरु सिष्य न कोइ ॥२०॥
गुरु है पूरा सिष सूरा, बाग मोरि रन पैठ।
सत्त सुकृत को चीन्हि के, एक तख्त चढ़ि बैठ ॥२१॥

---

(१) पानी। (२) खलियान। (३) प्रदान=बखशिश। (४) संसारी।

जा के हिरदे गुरु नहीं, सिष साखा की भूख।
ते नर ऐसा सूखसी, ज्यों बन दाझा रूख ॥२२॥
सिष साखा बहुते किये, सतगुरु किया न मित्त।
चाले थे सतलोक को, बीचहि अटका चित्त ॥२३॥

गुरुमुख का अंग।

गुरुमुख गुरु चितवत रहै, जैसे मनी भुवंग।
कहै कबीर बिसरै नहीं, यह गुरुमुख को अंग ॥१॥
गुरुमुख गुरु चितवत रहै, जैसे साह दिवान।
और कबीर नहिं देखता, है वाही को ध्यान ॥२॥
गुरुमुख गुरु आज्ञा चलै, छोड़ि देइ सब काम।
कहै कबीर गुरुदेव को, तुरत करै परनाम ॥३॥
उलटे सुलटे बचन कै, शिष्य न मानै दुक्ख।
कहै कबीर संसार में, सो कहिये गुरुमुक्ख ॥४॥

मनमुख का अंग।

सेवक-मुखी कहावई, सेवा में दृढ़ नाहिं।
कहै कबीर सो सेवका, लख चौरासी जाहिं ॥१॥
फल कारन सेवा करै, तजै न मन से काम।
कहै कबीर सेवक नहीं, चहै चौगुना दाम ॥२॥
सतगुरु सब्द उलंघि कै, जो सेवक कहिं जाय।
जहाँ जाय तहँ काल है, कह कबीर समुझाय ॥३॥
गुरू बिचारा क्या करै, जो सिष्ये माहीं चूक।
भावै ज्यों परमोधिये, बाँस बजाई फूँक ॥४॥
मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझ को सौंपते, क्या लागैगा मोर ॥५॥

तेरा तुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो मोर।
मेरा मुझ को सौंपते, जो घड़कैगा तोर ॥६॥

॥ चौपाई ॥

गुरु से करै कपट चतुराई। सो हंसा भव भरमै आई ॥७॥
जो सिष गुरू की निंदा करई। सूकर स्वान गर्भ में परई ॥८॥

निगुरा का अंग।

गुरु बिनु माला फेरना, गुरु बिनु करता दान।
गुरु बिनु सब निस्फल गया, बूझौ बेद पुरान ॥१॥
जो निगुरा सुमिरन करै, दिन में सौ सौ बार।
नगर नायका सत करै, जरै कौन की लार[1] ॥२॥
गर्भ जोगेसर गुरु मिला, लागा हरि की सेव[2]।
कहै कबीर बैकुंठ से, फेर दिया सुकदेव ॥३॥
जनक बिदेही गुरु किया, लागा हरि की सेव।
कहै कबीर बैकुंठ में, उलटि मिला सुकदेव ॥४॥
पूरे को पूरा मिलै, पड़ै सो पूरा दाव।
निगुरा तो ऊभट[3] चलै, जब तब करै कुदाव[4] ॥५॥
जो कामिनि परदे रहै, सुनै न गुरु मुख बात।
होइ जगत में कूकरी, फिरै उघारे गात ॥६॥
कबीर गुरु की भक्ति बिनु, नारि कूकरी होय।
गली गली भूँसत फिरै, टूक न डारै कोय ॥७॥
कबीर गुरु की भक्ति बिनु, राजा चिरखभ होय।
माटी लदै कुम्हार की, घास न डारै कोय ॥८॥

(१) शहर की कसबी अगर सती होने का ढोंग रचै तो किस पुरुष के साथ जलै। (२) कहते हैं कि सुकदेव जी माता के गर्भ ही में कई बरस तक रह कर भगवत भजन करते रहे पर स्वर्ग में जगह पाने योग्य नहीं समझे गये जब तक कि राजा जनक को गुरु धारन नहीं किया। (३) कुराह। (४) कुव फाँद।

चौँसठ दीवा[१] जोइ के, चौदह चंदा[२] माहिँ।
तेहि घर किस का चाँदना, जेहि घर सतगुरु नाहिँ ॥९॥
निसि अँधियारी कारने, चौरासी लख चंद।
गुरु बिन एते उदय हूँ, तहू सुद्दष्टिहि मंद ॥१०॥
गगन मँडल के बीच में, तहवाँ झलकै नूर।
निगुरा महल न पावई, पहुँचैगा गुरु पूर ॥११॥

गुरु शिष्य खोज का अंग।

ऐसा कोई ना मिला, हम को दे उपदेस।
भवसागर में बूड़ता, कर गहि काढ़ै केस ॥१॥
ऐसा कोई ना मिला, जा से रहिये लाग।
सब जग जलता देखिया, अपनी अपनी आग ॥२॥
ऐसा कोई ना मिला, घर दे अपन जराय।
पाँचो लरिका पटकि के, रहै नाम लौ लाय ॥३॥
हम घर जारा आपना, लूका लीन्हा हाथ।
वाहू का घर फूँक दूँ, जो चलै हमारे साथ ॥४॥
ऐसा कोई ना मिला, समुझै सैन सुजान।
ढोल बाजता ना सुनै, सुरति-बिहूना कान ॥५॥
ऐसा कोई ना मिला, हम को दे पहिचान।
अपना करि किरपा करै, ले उतार मैदान ॥६॥
ऐसा कोई ना मिला, जा से कहैं दुख रोय।
जा से कहिये भेद को, सो फिर बैरी होय ॥७॥
ऐसा कोई ना मिला, सब बिधि देइ बताय।
कवन मँडल में पुरुष है, जाहि रटौं लौ लाय ॥८॥

---

(१) चौँसठ जोगिनी की कला। (२) चौदह बिद्या का प्रकाश।

हम देखत जग जात है, जग देखत हम जाहिँ।
ऐसा कोई ना मिला, पकरि छुड़ावै बाहिँ ॥९॥
जैसा ढूँढ़त मैं फिरौं, तैसा मिला न कोय।
ततबेता तिरगुन रहित, निरगुन से रत होय ॥१०॥
सारा सूरा बहु मिले, घायल मिला न कोय।
घायल को घायल मिलै, गुरु भक्ती दृढ़ होय ॥११॥
प्रेमी ढूँढ़त मैं फिरौं, प्रेमी मिलै न कोय।
प्रेमी से प्रेमी मिलै, बिष से अमृत होय ॥१२॥
सिष तो ऐसा चाहिये, गुरु को सब कछु देय।
गुरु तो ऐसा चाहिये, सिष से कछू न लेय ॥१३॥
सर्पहिँ दूध पियाइये, सोई बिष ह्वै जाय।
ऐसा कोई ना मिला, आपेही बिष खाय[1] ॥१४॥
नादी बिन्दी बहु मिले, करत कलेजे छेद।
कोई तखत तरे काना मिला, जा से पूछौं भेद ॥१५॥
तखत तरे की सो कहै, तखत तरे का होय।
मंझ महल की को कहै, बाँका परदा सोय ॥१६॥
मंझ महल की गुरु कहै, देखा सब घर बार।
कूँची दीन्ही हाथ में, परदा दिया उघार ॥१७॥
बाँका परदा खोलि के, सन्मुख ले दीदार।
बाल सनेही साँइयाँ, आदि अंत का यार ॥१८॥
पुहुपन केरी बास ज्यौं, व्यापि रहा सब ठाहिँ।
बाहर कबहुँ न पाइये, पावै संतों माहिँ ॥१९॥
बिरछा पूछै बीज को, बीज बृच्छ के माहिँ।
जीव जो ढूँढ़ै ब्रह्म को, ब्रह्म जीव के पाहिँ ॥२०॥

---

(१) अपने शिष्य के बिकारों को खींच ले।

डाल जो ढूँढ़ै मूल को, मूल डाल के माहिं।
आप आप को सब चलै, कोइ मिलै मूल से नाहिं ॥२१॥
मूल कबीरा गहि चढ़ै, फल खावै भरि पेट।
चौरासी की गम नहीं, ज्यौं जाने त्यौं लेट ॥२२॥
आदि हती सब आप में, सकल हती ता माहिं।
ज्यौं तरवर के बीज में, डाल पात फल छाँहिं ॥२३॥
जिन ढूँढ़ा तिन पाइया, गहिरे पानी पैठि।
मैं बपुरा बूड़न डरा, रहा किनारे बैठि ॥२४॥
हेरत हेरत हेरिया, रहा कबीर हिराय।
बुंद समानी समुँद में, सो कित हेरी जाय ॥२५॥
हेरत हेरत हे सखो, रहा कबीर हिराय।
समुँद समाना बुंद में, सो कित हेरा जाय ॥२६॥
बुंद समानी समुँद में, यह जानै सब कोय।
समुँद समाना बुंद में, बूझै बिरला कोय ॥२७॥
एक समाना सकल में, सकल समाना ताहि।
कबीर समाना बूझ में, तहाँ दूसरा नाहिं ॥२८॥
कबीर वैद बुलाइया, जो भावै सो लेहि।
जेहि जेहि औषध गुरु मिलै, सो सो औषधि देहि ॥२९॥

सेवक और दास का अंग।

सेवक सेवा में रहै, सेवक कहिये सोय।
कहै कबीर सेवा बिना, सेवक कबहुँ न होय ॥१॥
सेवक सेवा में रहै, अनत कहूँ नहिं जाय।
दुख सुख सिर ऊपर सहै, कह कबीर समुझाय ॥२॥

सेवक स्वामी एक मति, जो मतिमें मतिमिलि जाय।
चतुराई रीझै नहीं, रीझै मन के भाय ॥३॥
द्वार धनी के पड़ि रहै, धका धनी का खाय।
कबहुँक धनी निवाजई, जो दर छाड़ि न जाय ॥४॥
कबीर गुरु सब को चहै, गुरु को चहै न कोय।
जब लग आस सरीर की, तब लग दास न होय ॥५॥
सेवक सेवा में रहै, सेव करै दिन रात।
कहै कबीर कुसेवका, सन्मुख ना ठहरात ॥६॥
निरबंधन बंधा रहै, बंधा निरबंध होय।
करम करै करता नहीं, दास कहावै सोय ॥७॥
गुरु समरथ सिर पर खड़े, कहा कमी तोहि दास।
ऋद्धि सिद्धि सेवा करै, मुक्ति न छाड़ै पास ॥८॥
दास दुखी तो हरि दुखी, आदि अंत तिहुँ काल।
पलक एक में प्रगट ह्वै, छिन में करै निहाल ॥९॥
दात धनी याचै[1] नहीं, सेव करै दिन रात।
कहै कबीर ता सेवकहिँ, काल करै नहिँ घात ॥१०॥
सब कुछ गुरु के पास है, पइये अपने भाग।
सेवक मन से प्यार है, निसु दिन चरनन लाग ॥११॥
सेवक कुत्ता गुरू का, मोतिया वा का नाँव।
डोरी लागी प्रेम की, जित खैंचै तित जाव ॥१२॥
दुर दुर करैं तो बाहिरे, तू तू करैं तो जाय।
ज्योँ गुरु राखैं त्योँ रहै, जो देवैं सो खाय ॥१३॥
दासातन हिरदे नहीं, नाम धरावै दास।
पानी के पीये बिना, कैसे मिटै पियास ॥१४॥

---

(१) माँगै।

भुक्ति मुक्ति माँगौं नहीं, भक्ति दान दै मोहिं ।
और कोई याचौं नहीं, निसु दिन याचौं तोहिं ॥१५॥
धरती अम्बर[1] जायँगे, बिनसैंगे कैलास ।
एकमेक होइ जायँगे, तब कहाँ रहैंगे दास ॥१६॥
एकम एका होन दे, बिनसन दे कैलास ।
धरती अम्बर जान दे, मो मैं मेरे दास ॥१७॥
यह मन ता को दीजिये, जो साचा सेवक होय ।
सिर ऊपर आरा सहै, तहू न दूजा जोय ॥१८॥
काजर केरी कोठरी, ऐसा यह संसार ।
बलिहारी वा दास की, पैठि के निकसनहार ॥१९॥
काजर केरी कोठरी, काजर ही का कोट ।
बलिहारी वा दास की, रहै नाम की ओट ॥२०॥
कबिरा पाँचो बलधिया[2], ऊजर ऊजर जाहिं ।
बलिहारी वा दास की, पकरि जो राखै वाहिं ॥२१॥
कबीर गुरु के भावते, दूरहि तैं दीसंत ।
तन छीना मन अनमना[3], जग तैं रूठि फिरंत ॥२२॥
अनराते सुख सोवना, राते नींद न आय ।
ज्यौं जल टूटे माछरी, तलफत रैन बिहाय ॥२३॥
राता राता सब कहै, अनराता कहै न कोय ।
राता सोही जानिये, जा तन रक्त न होय ॥२४॥
जा घट मैं साईं बसै, सो क्यौं छाना होय ।
जतन जतन करि दाबिये, तौ उँजियारा सोय ॥२५॥
कबीर खालिक जागिया, और न जागै कोय ।
कै जागै बिषया भरा, कै दास बंदगी जोय ॥२६॥

---

(१) आकाश । (२) बैल । (३) बकलः ।

सब घट मेरा साइयाँ, सूनी सेज न कोय।
बलिहारी वा घट्ट की, जा घट परगट होय ॥२७॥

सूरमा का अंग।

गगन दमामा बाजिया, पड़ल निसाने चोट।
कायर भाजै कछु नहीँ, सूरा भाजै खोट ॥१॥
गगन दमामा बाजिया, पड़ल निसाने घाव।
खेत पुकारै सूरमा, अब लड़ने का दाँव ॥२॥
गगन दमामा बाजिया, हनहूनिया[1] के कान।
सूरा धरै बधावना, कायर तजै परान ॥३॥
सूरा सोई सराहिये, लड़ै धनी के हेत।
पुरजा पुरजा होइ रहै, तऊ न छाड़ै खेत ॥४॥
सूरा सोई सराहिये, अंग न पहिरै लोह।
जूझै सब बँद खोलि कै, छाड़ै तन का मोह ॥५॥
खेत न छाड़ै सूरमा, जूझै दो दल माहिँ।
आसा जीवन मरन की, मन मेँ आनै नाहिँ ॥६॥
अब तो जूझै ही बनै, मुड़ि चाले घर दूर।
सिर साहिब को सौंपते, सोच न कीजै सूर ॥७॥
घायल तो घूमत फिरै, राखा रहै न ओट।
जतन किये नहिँ बाहुरै[2], लगी मरम की चोट ॥८॥
घायल की गति और है, औरन की गति और।
प्रेम बान हिरदे लगा, रहा कबीरा ठौर ॥९॥
सूरा सीस उतारिया, छाड़ी तन की आस।
आगे से गुरु हरखिया, आवत देखा दास ॥१०॥

---

(१) लड़ने वाला। (२) मुड़े।

कबीर घोड़ा प्रेम का, (कोइ) चेतन चढ़ि असवार।
ज्ञान खड़ग लै काल सिर, भली मचाई मार ॥११॥
चित चेतन ताजी[1] करै, लव की करै लगाम।
सबद गुरू का ताजना[2], पहुँचै संत सुठाम ॥१२॥
कबीर तुरी पलानिये, चाबुक लीजै हाथ।
दिवस थके साँई मिलै, पीछे पड़सी रात ॥१३॥
हरि घोड़ा ब्रह्मा कड़ी, बिस्नू पीठ पलान।
चंद सूर दोय पायड़ा[3], चढ़सी संत सुजान ॥१४॥
साध सती औ सूरमा, इनकी बात अगाध।
आसा छोड़ैं देह को, तिन में अधिका साध ॥१५॥
साध सती औ सूरमा, इन पटतर कोइ नाहिं।
अगम पंथ को पग धरैं, डिगैं तो ठाहर[4] नाहिं ॥१६॥
साध सती और सूरमा, कबहुँ न फेरैं पीठ।
तीनों निकसि जो बाहुरैं, ता को मुँह मति दीठ ॥१७॥
साध सती औ सूरमा, ज्ञानी औ गज दंत।
एते निकसि न बाहुरैं, जो जुग जाहिं अनंत ॥१८॥
साध सती औ सूरमा, दई न मोड़ै मूँह।
ये तीनों भागे बुरे, साहिब जा को सूँह[5] ॥१९॥
सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर सोय।
जैसे बाती दीप की, कटि उँजियारा होय ॥२०॥
धड़ से सीस उतारि कै, डारि देइ ज्यौं ढेल।
कोई सूर को सोहसी, घर जाने का खेल ॥२१॥
लड़ने को सबही चले, सस्तर बाँधि अनेक।
साहिब आगे आपने, जूझैगा कोइ एक ॥२२॥

---

(१) घोड़ा। (२) ताज़ियाना = कोड़ा। (३) रकाब। (४) ठिकाना। (५) सन्मुख।

जूझैंगे तब कहैंगे, अब कछु कहा न जाय।
भाड़ पड़े मन मसखरा, लड़ै किधौं भगि जाय ॥२३॥
सूरा के मैदान में, कायर फंदा[1] आय।
ना भाजै ना लड़ि सकै, मनहीं मन पछिताय ॥२४॥
कायर बहुत पमावहीं[2], बहुक[3] न बोलै सूर।
सारी खलक यों जानही, केहि के मोहड़े नूर ॥२५॥
सूरा थोड़ा ही भला, सत करि रोपै पग्ग[4]।
घना मिला केहि काम का, सावन का सा बग्ग[5] ॥२६॥
रनहिं धसा जो ऊबरा, आगे गिरह निवास।
घरै बधावा बाजिया, और न दूजी आस ॥२७॥
साईं सेंति[6] न पाइये, बातन मिलै न कोय।
कबीर सौदा नाम का, सिर बिन कबहुँ न होय ॥२८॥
अप्प स्वारथी मेदिनी[7], भक्ति स्वारथी दास।
कबीर नाम सुवारथी, छाड़ो तन की आस ॥२९॥
ज्यों ज्यों गुरु गुन[8] साँभलै[9], त्यों त्यों लागै तीर।
लागे से भागै नहीं, सोई साध सुधीर ॥३०॥
ऊँचा तरवर गगन को, फल निरमल अति दूर।
अनेक सयाने पचि गये, पंथहिं मूए झूर[10] ॥३१॥
दूर भया तो क्या भया, सतगुरु मेला सोय[11]।
सिर सौंपै उन चरन में, कारज सिद्धी होय ॥३२॥
जेता तारा रैन का, एता बैरी मुज्झ।
धड़ सूली सिर कंगुरे[12], तउ न बिसारूँ तुज्झ ॥३३॥

---

(१) फँस पड़ा। (२) डींग मारता है। (३) बढ़कर। (४) पैर। (५) बगीचा जो सावन के महीने यानी बरसात में घना हो आता है और फिर जैसे का तैसा। (६) मुफ़्त। (७) पृथ्वी पानी को चाहती है। (८) धनुष की डोर या रोदा। (९) खिंचे। (१०) रास्ते ही में खाली अटक रहे। (११) जिसको पूरे सतगुरु मिले हैं। (१२) अगले समय में शत्रु को सूली पर चढ़ा कर उसका सिर काट लिया करते थे और गूरे पर लगा देते थे।

चोपड़ माँड़ी चौहटे, अरध उरध बाजार।
सतगुरु सेती खेलता, कबहुँ न आवै हार ॥३४॥
जो हारौं तो सेव गुरु, जो जीतौं तो दाँव।
सत्तनाम से खेलता, जो सिर जाव तो जाव ॥३५॥
खोजी को डर बहुत है, पल पल पड़ै बिजोग।
प्रन राखत जो तन गिरै, सो तन साहिब जोग ॥३६॥
अगिनि आँच सहना सुगम, सुगम खड़ग की धार।
नेह निभावन एक रस, महा कठिन ब्योहार ॥३७॥
नेह निभाये ही बनै, सोचे बनै न आन।
तन दे मन दे सीस दे, नेह न दीजै जान ॥३८॥
भाव भालका[1] सुरति सर[2], धरि धीरज कर[3] तान।
मन की मूठ जहाँ मँड़ी, चोट तहाँ हीं जान ॥३९॥
मेरे संसय कछु नहीं, लागा गुरु से हेत।
काम क्रोध से जूझना, चौड़े[4] माँड़ा खेत ॥४०॥
कायर भया न छूटि हो, कछु सूरता समाय।
भरम भालका दूर करि, सुमिरन सेल मँजाय ॥४१॥
कोने परा ना छूटि हो, सुन रे जीव अबूझ।
कबिरा मँड़ मैदान में, करि इंद्रिन से जूझ ॥४२॥
बाँका गढ़ बाँका भला, बाँको गढ़ की पौल[5]।
काढ़ि कबीरा नीकला, जम सिर घाली रौल[6] ॥४३॥
बाँकी तेग[7] कबीर की, अनी पड़ै दुइ टूक।
मारा मीर महाबली, ऐसी मूठ अचूक ॥४४॥
कबीर तोड़ा मान गढ़, पकड़े पाँचो स्वान[8]।
ज्ञान कुल्हाड़ा[9] कर्म बन, काटि किया मैदान ॥४५॥

---

(१) गाँसी। (२) तीर। (३) हाथ। (४) मैदान में। (५) रास्ता। (६) खलबली
(७) तलवार। (८) पाँचो कुत्ते। (९) कुल्हाड़ा।

कबीर तोड़ा मान गढ़, मारे पाँच गनीम[1] ।
सीस नवाया धनी को, साजी बड़ी मुहीम[2] ॥४६॥
कबीर पाँचो मारिये, जा मारे सुख होय ।
भला भली सब कोइ कहै, बुरा न कहसी कोय ॥४७॥
ऐसी मार कबीर की, मुवा न दीसै कोय ।
कह कबीर सोइ ऊबरे, धड़ पर सीस न होय ॥४८॥
सूरा सार सँभालिया, पहिरा सहज सँजोग ।
ज्ञान गजंदा[3] चढ़ि चला, खेत पड़न का जोग[4] ॥४९॥
सीलता संजोय ले, सूर चढ़े संग्राम ।
अब की भाज न सरत है, सिर साहिब के काम ॥५०॥
सूरा नाम धराइ के, अब का डरपै बीर ।
मँड़ि रहना मैदान में, सन्मुख सहना तीर ॥५१॥
तीर तुपक[5] से जो लड़ै, सो तो सूर न होय ।
माया तजि भक्ती करै, सूर कहावै सोय ॥५२॥
कबीर सोई सूरमा, मन से माँड़ै जूझ ।
पाँचो इंद्री पकरि कै, दूरि करै सब दूझ ॥५३॥
कबीर सोई सूरमा, जा के पाँचो हाथ ।
जा के पाँचो बस नहीं, तेहिँ गुरु संग न साथ ॥५४॥
कबीर रन में पैठि के, पीछे रहै न सूर ।
साईं से सनमुख भया, रहसी सदा हजूर ॥५५॥
जाय पूछ वा घायलै, पीर दिवस निसि जागि ।
वाहनहारा जानिहै, कै जानै जेहिँ लागि ॥५६॥
कबीर हीरा बनिजिया, महँगे मोल अपार ।
हाड़ गला माटी मिली, सिर साटे ब्योहार ॥५७॥

---

(१) दुशमन—काम क्रोध लोभ मोह अहंकार। (२) मुहिम या लड़ाई। (३) हाथी। (४) शुभ घड़ी। (५) बंदूक़।

भागे भली न होयगी, कहाँ धरोगे पाँव।
सिर सौंपो सीधे लड़ो, काहे करो कुदाव ॥५८॥

सूर सिलाह[1] न पहिरई, जब रन बाजा तूर।
माथा काटै धड़ लड़ै, तब जानीजे सूर ॥५९॥

जोग से तो जौहर[2] भला, घड़ी एक का काम।
आठ पहर का जूझना, बिन खाँड़े संग्राम ॥६०॥

तीर तुपक बरछी बहै, बिगसि जायगा चाम।
सूरा के मैदान में, कायर का क्या काम ॥६१॥

सूर के मैदान में, कायर का क्या काम।
सूरा से सूरा मिलै, तब पूरा संग्राम ॥६२॥

बिना पाँव का पंथ है, मंझि सहर अस्थान।
बिकट बाट औघट घना, कोइ पहुँचै संत सुजान ॥६३॥

पंज असमाना जब लिया, तब रन धसिया सूर।
दिल सौंपा सिर ऊबरा, मुजरा धनी हजूर ॥६४॥

रन धसिया ते ऊबरा, पाया गेह निवास।
घरे बधावा बाजिया, औ जीवन की आस ॥६५॥

जब लगि धड़ पर सीस है, सूर कहावै सोय।
माथा टूटै धड़ लड़ै, कमँद[3] कहावै सोय ॥६६॥

सूरा तो साचे मते, सहै जो सन्मुख धार।
कायर अनी चुभाइ कै, पाछे झँखै अपार ॥६७॥

भाजि कहाँ लौं जाइये, भय भारी घर दूर।
बहुरि कबीरा खेत रहु, दल आया भर पूर ॥६८॥

सार बहै लोहा झरै, टूटै जिरह[4] जँजीर।
अबिनासी की फौज में, माँड़ा दास कबीर ॥६९॥

---

(१) लड़ाई के हथियार, ढाल तरवार। (२) आत्म-घात, ख़ुदकुशी। (३) एक राक्षस जिसका सिर गदा की मार से धड़ के भीतर घुस गया था लेकिन फिर भी वह लड़ता था, बिना सीस का जोधा। (४) बकतर।

ज्ञान कमाना[1] लै। गुना[2], तन तरकस मन तीर।
झलका बहता सार का, मारै हदफ[3] कबीर ॥७०॥
कठिन कमान कबीर की, पड़ी रहै मैदान।
केते जोधा पचि गये, कोइ खैंचै संत सुजान ॥७१॥
घटी घढ़ी जानैं नहीं, मन मैं राखै जीत।
गाड़र[4] लड़ै गजंद सा, देखो उलटी रीत ॥७२॥
धुजा फरक्कै सुन्न में, बाजै अनहद तूर।
तकिया है मैदान में, पहुँचैगा कोइ सूर ॥७३॥
नाम रसायन प्रेम रस, पीवत बहुत रसाल।
कबीर पीवन कठिन है, माँगै सीस कलाल ॥७४॥
कायर भागा पीठ दै, सूर रहा रन माहिं।
पटा लिखाया गुरू पै, खरा खजीना खाहि ॥७५॥
कायर सेरी[5] ताकवै, सूरा माँड़ै[6] पाँव।
सीस जीव दोऊ दिया, पीठ न आया घाव ॥७६॥

पतिब्रता का अंग।

पतिवरता को सुख घना, जा के पति है एक।
मन मैली विभिचारिनी, ता के खसम अनेक ॥१॥
पतिवरता मैली भली, काली कुचिल कुरूप।
पतिवरता के रूप पर, वारौं कोटि सरूप ॥२॥
पतिवरता पति को भजै, और न आन सुहाय।
सिंह बचा जो लंघना, तौभी घास ना खाय ॥३॥
नैनौं अंतर आव तू, नैन झाँपि तोहि लेवँ।
ना मैं देखौं और को, ना तोहि देखन देवँ ॥४॥

---

(१) धनुष। (२) डोरी। (३) निशाना। (४) भेड़। (५ रास्ता भागने का। (६) जमावे।

कबीर सीप समुद्र की, रटै पियास पियास।
और बूँद को ना गहै, स्वाँति बूँद की आस ॥५॥
पपिहा का पन देखि करि, धीरज रहै न रंच।
मरते दम जल में पड़ा, तऊ ना बोरी चंच[१] ॥६॥
मैं सेवक समरत्थ का, कबहूँ ना होय अकाज।
पतिबरता नाँगी रहै, तो वाही पति को लाज ॥७॥
मैं सेवक समरत्थ का, कोई पुरबला भाग।
सेती जागी सुंदरी, साइँ दिया सुहाग ॥८॥
पतिबरता के एक तू, और न दूजा कोय।
आठ पहर निरखत रहै, सोई सुहागिन होय ॥९॥
इक चित होय न पिय मिले, पतिब्रत ना आवै।
चंचल मन चहुँ दिस फिरै, पिय कैसे पावै ॥१०॥
सुंदर तो साइँ भजै, तजै आन की आस।
ताहि ना कबहूँ परिहरै, पलक ना छाड़ै पास ॥११॥
चढ़ी अखाड़े सुंदरी, माँड़ा पिउ से खेल।
दीपक जोया ज्ञान का, काम जरै ज्यों तेल ॥१२॥
सूरा के तो सिर नहीं, दाता के धन नाहिं।
पतिबरता के तन नहीं, सुरत बसै पिउ माहिं ॥१३॥
दाता के तो धन घना, सूरा के सिर बीस।
पतिबरता के तन सही, पत राखै जगदीस ॥१४॥
पतिबरता मैली भली, गले काँच की पोत।
सब सखियन में यों दिपै, ज्यों रबि ससि की जोत ॥१५॥
पतिबरता पति को भजै, पति पर धरि बिस्वास।
आन दिसा चितवै नहीं, सदा पीव की आस ॥१६॥

(१) चोंच।

पतिवरता बिभिचारिनी, एक मँदिर में बास।
वह रँग-राती पीव के, यह घर घर फिरै उदास ॥१७॥
नाम न रटा तो क्या हुआ, जो अंतर है हेत।
पतिवरता पति को भजै, मुख से नाम न लेत ॥१८॥
सुरत समानी नाम में, नाम किया परकास।
पतिबरता पति को मिली, पलक ना छाड़ै पास ॥१९॥
साँईं मोर सुलच्छना, मैं पतिवरता नार।
द्यो दीदार दया करो, मेरे निज भरतार ॥२०॥
जो यह एक न जानिया, तो बहु जाने का होय।
एकै तें सब होत हैं, सब तें एक न होय ॥२१॥
जो यह एकै जानिया, तो जानो सब जान।
जो यह एक न जानिया, तो सबही जान अजान ॥२२॥
सब आये उस एक में, डार पात फल फूल।
अब कहो पाछे क्या रहा, गहि पकड़ा जब मूल ॥२३॥
प्रीति अड़ी है तुझ से, बहु गुनियाला कंत।
जो हँस बोलौं और से, नील रँगाऔं दंत ॥२४॥
कबीर रेख सिंदूर अरु, काजर दिया न जाय।
नैनन प्रीतम रमि रहा, दूजा कहाँ समाय ॥२५॥
आठ पहर चौंसठ घड़ी, मेरे और न कोय।
नैना माहीं तू बसै, नींद को ठौर न होय ॥२६॥
. । साईं एक तू, दूजा और न कोय।
.. साईं तौ करौं, जो कुल दूजो होय ॥२७॥
.वरता तब जानिये, रतिउ[१] न उघरै नैन।
.तरगत सकुची रहै, बोलै मधुरे बैन ॥२८॥

(१) रत्ती भर भी।

भोरै भूली खसम को, कबहुँ न किया बिचार।
सतगुरु आन बताइया, पूरबला भरतार ॥२९॥
जो गावै सो गावना, जो जोड़ै सो जोड़।
पतिबरता साधू जना, यहि कलि में हैं थोड़ ॥३०॥
पतिबरता ऐसे रहै, जैसे चोली पान[1]।
तब सुख देखै पीव का, चित्त न आवै आन ॥३१॥
मैं अबला पिउ पिउ करौं, निरगुन मेरा पीव।
सुन्न सनेही गुरू बिनु, और न देखौं जीव ॥३२॥

सती का अंग।

अब तो ऐसी ह्वै परी, मन अति निर्मल कीन्ह।
मरने का भय छाड़ि के, हाथ सिँधोरा लीन्ह ॥१॥
ढोल दमामा बाजिया, सबद सुना सब कोय।
जो सर[2] देखि सती भगै, दो कुल हाँसी होय ॥२॥
सती जरन को नीकसी, चित धरि एक बिबेक।
तन मन सौंपा पीव को, अंतर रही न रेख ॥३॥
सती जरन को नीकसी, पिउ का सुमिरि सनेह।
सबद सुनत जिय नीकसा, भूलि गई निज देह ॥४॥
सती बिचारी सत किया, काँटों सेज बिछाय।
लै सूती पिय आपना, चहुँ दिस अगिनि लगाय ॥५॥
सती न पीसै पीसना, जो पीसै सो राँड़।
साधू भीख न माँगई, जो माँगै सो भाँड़ ॥६॥
हौं तोहि पूछौं हे सखी, जीवत क्यों न जराय।
मूए पीछे सत करै, जीवत क्यों न कराय ॥७॥

---

(१) चोली की दोनों टुकियों पर पान बना देते हैं। (२) अगिन।

बिभिचारिन का अंग।

नारि कहावै पीव की, रहै और सँग सोय।
जार सदा मन में बसै, खसम खुसी क्योँ होय ॥१॥
सेज बिछावै सुन्दरी, अंतर परदा होय।
तन सौँपै मन दे नहीँ, सदा दुहागिन सोय ॥२॥
कबीर मन दीया नहीँ, तन करि डारा जेर।
अंतरजामी लखि गया, बात कहन का फेर ॥३॥
नवसत[1] साजे सुन्दरी, तन मन रही सँजोय।
पिय के मन मानै नहीँ, (तो) बिडँबर[2] किये क्या होय ॥४॥
मुख से नाम रटा करै, निसु दिन साधन संग।
कहु धौँ कौन कुफेर से, नाहिन लागत रंग ॥५॥
मन दीया कहिँ औरही, तन साधन के संग।
कह कबीर कोरी गजी, कैसे लागै रंग ॥६॥
रात जगावै राँड़िया, गावै बिषया गीत।
मारै लौंदा लापसी, गुरू न लावै चीत ॥७॥
बिभिचारिन बिभिचार मेँ, आठ पहर हुसियार।
कह कबीर पतिब्रत बिन, क्योँ रीझै भरतार ॥८॥
कबीर जो कोइ सुन्दरी, जानि करै बिभिचार।
ताहि न कबहूँ आदरै, परम पुरुष भरतार ॥९॥
बिभिचारिन के बस नहीँ, अपनो तन मन सोय।
कह कबीर पतिब्रत बिन, नारी गई बिगोय ॥१०॥
कबीर या जग आइ कै, कीया बहुतक मिंत[3]।
दिल बाँधा एक से, ते सोवै निःचिंत ॥११॥

---

(१) नौ और सात—सोलह (सिंगार)। (२) बाहरी सजाव (३) मित्र।

भक्ति का अंग ।

कबीर गुरु की भक्ति करु, तजि बिषया रस चौज ।
बार बार नहिं पाइहै, मानुष जन्म की मौज ॥१॥
भक्ति बीज बिनसै नहीं, आइ पड़ै जो चोल[1] ।
कंचन जो बिष्टा पड़ै, घटै न ता को मोल ॥२॥
गुरु भक्ती अति कठिन है, ज्यौं खाँड़े की धार ।
बिना साच पहुँचै नहीं, महा कठिन व्यौहार ॥३॥
भक्ति दुहेली[2] गुरू की, नहिं कायर का काम ।
सीस उतारै हाथ से, सो लेसी सतनाम ॥४॥
भक्ति दुहेली नाम की, जस खाँड़े की धार ।
जो डोलै तो कटि परै, निःचल उतरै पार ॥५॥
कबीर गुरु की भक्ति का, मन में बहुत हुलास ।
मन मनसा माँजै नहीं, होन चहत है दास ॥६॥
हरष बड़ाई देख करि, भक्ति करै संसार ।
जब देखै कछु हीनता, औगुन धरै गँवार ॥७॥
भक्ति निसेनी[3] मुक्ति की, संत चढ़ै सब धाय ।
जिन जिन मन आलस किया, जनम जनम पछिताय ॥८॥
भक्ति बिना नहिं निस्तरै, लाख करै जो कोय ।
सबद सनेही ह्वै रहै, घर को पहुँचै सोय ॥९॥
जब लग नाता जगत का, तब लग भक्ति न होय ।
नात तोड़ हरि को भजै, भक्त कहावै सोय ॥१०॥
भक्ति प्रान तें होत है, मन दै कीजै भाव ।
परमारथ परतीत में, यह तन जाव तो जाव ॥११॥

(१) चाहे जैसे नीच ऊँच चोले या योनि में जीव आ पड़ै । (२) कठिन ।
(३) सीढ़ी ।

भक्ति भेष बहु अंतरा, जैसे धरनि अकास।
भक्त लीन गुरु चरन में, भेष जगत की आस ॥१२॥

जहाँ भक्ति तहँ भेष नहिं, बर्नास्रम तहँ नाहिँ।
नाम भक्ति जो प्रेम से, सो दुर्लभ जग माहिँ ॥१३॥

भक्ति कठिन दुर्लभ महा, भेष सुगम निज सोय।
भक्ति नियारी भेष तेँ, यह जानैं सब कोय ॥१४॥

भक्ति पदारथ जब मिलै, जब गुरु होय सहाय।
प्रेम प्रीति की भक्ति जो, पूरन भाग मिलाय ॥१५॥

सब से कहौँ पुकारि कै, क्या पंडित क्या सेख।
भक्ति ठानि सबदै गहै, बहुरि न काछै भेख ॥१६॥

देखा देखी भक्ति का, कबहुँ न चढ़सी रंग।
बिपति पड़े योँ छाड़सी, ज्योँ कैँचुली भुवंग ॥१७॥

टोटे में भक्ती करै, ता का नाम सपूत।
माया धारी मसखरे, केते ही गये ऊत ॥१८॥

देखा देखी पकड़सी, गई छिनक में छूट।
कोइ बिरला जन बाहुरे, सतगुरु स्वामी मूठ ॥१९॥

ज्ञान सँपूरन ना भिदा, हिरदा नाहिँ जुड़ाय।
देखा देखी भक्ति का, रंग नहीँ ठहराय ॥२०॥

प्रेम बिना जो भक्ति है, सो निज डिंभ बिचार।
उदर भरन के कारने, जनम गँवायो सार ॥२१॥

जान भक्त का नित मरन, अनजाने का राज।
सर औसर समझै नहीँ, पेट भरन से काज ॥२२॥

खेत बिगाख्यो खरतुआ[1], सभा बिगारी कूर[2]।
भक्ति बिगारी लालचो, ज्योँ केसर में धूर ॥२३॥

(१) एक निकम्मी घास जो आस पास के अनाज को डामिये ं को जला देती है
(२) दुष्ट।

तिमिर गया रबि देखते, कुबुधि गई गुरु ज्ञान।
सुगति गई इक लोभ तेँ, भक्ति गई अभिमान ॥२४॥
भक्ति भाव भादौँ नदी, सबै चलीँ घहराय।
सरिता सोई सराहिये, जो जेठ मास ठहराय ॥२५॥
कामी क्रोधी लालची, इन तेँ भक्ति न होय।
भक्ति करै कोइ सूरमा, जाति बरन कुल खोय ॥२६॥
भक्ति-दुवारा साँकरा, राई दसवेँ भाव[1]।
मन ऐरावत[2] ह्वै रहा, कैसे होय समाव ॥२७॥
कबीर गुरु की भक्ति बिनु, धिग जीवन संसार।
धूआँ का सा धौलहर[3], जात न लागै बार ॥२८॥
निरपच्छी को भक्ति है, निरमोही को ज्ञान।
निरदुन्दी को मुक्ति है, निरलोभी निर्बान ॥२९॥
भक्ति सोई जो भाव से, इकसम चित को राखि।
साच सील से खेलिये, मैं तैं दोऊ नाखि[4] ॥३०॥
सत्त नाम हल जोतिया, सुमिरन बीज जमाय।
खंड ब्रह्मंड सूखा पड़ै, भक्ति बीज नहिँ जाय ॥३१॥
जल ज्योँ प्यारा माछरी, लोभी प्यारा दाम।
माता प्यारा बालका, भक्त पियारा नाम ॥३२॥
कबीर गुरु की भक्ति से, संसय डारा धोय।
भक्ति बिना जो दिन गया, सो दिन साले मोय ॥३३॥
जब लगि भक्ति सकाम है, तब लगि निस्फल सेव।
कह कबीर वह क्योँ मिलै, निःकामी निज देव ॥३४॥
भक्ति प्यारी नाम की, जैसी प्यारी आगि।
सारा पट्टन[5] जरि गया, बहुरि ले आवे माँगि ॥३५॥

---

(१) राई के दसवेँ भाग जैसा झीना दरवाज़ा भक्ति का है (२) इन्द्र का हाथी। (३) धरहरा। (४) डाल कर। (५) शहर।

भक्ति बीज पलटै नहीं, जो जुग जाय अनंत।
ऊँच नीच घर जन्म ले, तऊ संत का संत ॥३६॥
जाति बरन कुल खोइ के, भक्ति करै चित लाय।
कह कबीर सतगुरु मिलैं, आवागवन नसाय ॥३७॥
भक्ति गेँद चौगान की, भावै कोइ लै जाय।
कह कबीर कछु भेद नहिँ, कहा रंक कहा राय ॥३८॥

लव का अंग।

लव लागी तब जानिये, छूटि कभूँ नहिँ जाय।
जीवत लव लागी रहै, मूए तहँहिँ समाय ॥१॥
जब लग कथनी हम कथी, दूर रहा जगदीस।
लव लागी कल ना परै, अब बोलत न हदीस ॥२॥
काया कमँडल भरि लिया, उज्जल निर्मल नीर।
पीवत तृषा न भाजही, तिरषा-वंत कबीर ॥३॥
मन उलटा दरिया मिला, लागा मलि मलि न्हान।
थाहत थाह न आवई, सो पूरा रहमान ॥४॥
गंग जमुन उर अंतरे, सहज सुन्न लव घाट।
तहाँ कबीरा मठ रचा, मुनि जन जोवैँ बाट ॥५॥
जेहि बन सिंह न संचरै, पंछी उड़ि नहिँ जाय।
रैन दिवस की गम नहीं, तहँ कबीर लव लाय ॥६॥
लै पावो तो लै रहो, लैन कहूँ नहिँ जाँव।
लै बूड़ै सो लै तिरै, लै लै तेरो नाँव ॥७॥
लव लागी कल ना पड़ै, आप बिसरजनि देँह।
अमृत पीवै आतमा, गुरु से जुड़ै सनेह ॥८॥

जैसी लव पहिले लगी, तैसो निबहै ओर।
अपनी देह की को गिने, तारै पुरुष करोर ॥९॥
लागी लागी क्या करै, लागी बुरी बलाय।
लागी सोई जानिये, जो वार पार होइ जाय ॥१०॥
लागी लागी क्या करै, लागी नाहीं एक।
लागी सोई जानिये, परै कलेजे छेक ॥११॥
लागी लागी क्या करै, लागी सोई सराह।
लागी तबही जानिये, उठै कराह कराह ॥१२॥
लगी लगन छूटै नहीं, जीभ चोंच जरि जाय।
मीठा कहा अँगार में, जाहि चकोर चबाय ॥१३॥
चकोर भरोसे चंद के, निगलै तप्त अँगार।
कह कबीर छाड़ै नहीं, ऐसी वस्तु लगार[1] ॥१४॥
जो तू पिय की प्यारिनी, अपना करि ले री।
कलह कल्पना मेटि कै, चरनोँ चित दे री ॥१५॥
और सुरत बिसरी सकल, लव लागी रहे संग।
आव जाव का से कहैाँ, मन राता गुरु रंग ॥१६॥
ग्रंथ माहिँ पाया अरथ, अरथे माहीँ मूल।
लव लागी निरमल भया, मिटि गया संसय सूल ॥१७॥
सोवैाँ तो सुपने मिलै, जागैाँ तो मन माहिँ।
लोयन[2] राता सुधि हरी, बिछुरत कबहूँ नाहिँ ॥१८॥
तूँ तूँ करता तूँ भया, तुझ में रहा समाय।
तुझ माहीं मन मिलि रहा, अब कहुँ अनत न जाय॥१९॥

बिरह का अंग।

बिरहिनि देइ सँदेसरा, सुनो हमारे पाव।
जल बिन मच्छी क्यों जिये, पानी में का जाव ॥१॥

(१) लगन या प्रीत। (२) आँख।

विरह तेज तन में तपै, अंग सबै अकुलाय।
घट सूना जिव पीव में, मौत ढूँढ़ि फिर जाय ॥२॥
विरह जलंती देखि कर, साईं आये धाय।
प्रेम बूँद से छिरक के, जलती लई बुझाय ॥३॥
अँखियन तो झाँई परी, पंथ निहार निहार।
जिभ्या तो छाला परा, नाम पुकार पुकार ॥४॥
नैनन तो झरि लाइया, रहट बहै निसु बास।
पपिहा ज्यौं पिउ पिउ रटै, पिया मिलन की आस ॥५॥
विरह बड़ो बैरी भयो, हिरदा धरै न धीर।
सुरत-सनेही ना मिलै, तब लगि मिटै न पीर ॥६॥
विरहिन ऊभी पंथ सिर, पंथिनि पूछै धाय[1]।
एक सबद कहु पीव का, कब रे मिलैंगे आय ॥७॥
बहुत दिनन की जोवती, रटत तुम्हारो नाम।
जिव तरसै तुव मिलन को, मन नाहीं बिस्राम ॥८॥
विरह भुवंगम[2] तन डसा, मंत्र न लागै कोय।
नाम बियोगी ना जियै, जियै तो बाउर[3] होय ॥९॥
विरह भुवंगम पैठि कै, किया कलेजे घाव।
बिरहिन अंग न मोड़िहै, ज्यों भावै त्यौं खाव ॥१०॥
विरहा पीव पठाइयो, कहि साधू परमोधि[4]।
जा घट तालाबेलिया[5], ता को लावो सोधि ॥११॥
कबीर सुन्दरि यों कहै, सुनिये कंत सुजान।
बेगि मिलो तुम आइ के, नहीं तो तजिहौं प्रान ॥१२॥
कै बिरहिन को मीच दे, कै आपा दिखलाय।
आठ पहर का दाझना, मो पै सहा न जाय ॥१३॥

(१) विरहिन रास्ते में खड़ी होकर बटोही से पूछती है। (२) साँप। (३) बौड़हा। (४) शांति देना (५) व्याकुलता।

बिरह कमंडल कर लिये, बैरागी दो नैन।
माँगैं दरस मधूकरी, छके रहैं दिन रैन ॥१४॥
येहि तन का दिवला करौं, बाती मेलौं जीव।
लोहू सींचौं तेल ज्यौं, कब मुख देखौं पीव ॥१५॥
कबीर हँसना दूर करु, रोने से करु चीत।
बिन रोये क्यौं पाइये, प्रेम पियारा मीत ॥१६॥
हँसौं तो दुख ना बीसरै, रोऔं बल घटि जाय।
मनहीं माहीं बिसुरना, ज्यौं घुन काठहिं खाय ॥१७॥
कीड़े काठ जो खाइया, खात किनहुँ नहिं दीठ।
छाल उपारि[1] जो देखिया, भीतर जमिया चीठ[2] ॥१८॥
हँस हँस कंत न पाइया, जिन पाया तिन रोय।
हाँसी खेले हिये मिलैं, तो कौन सुहागिन होय ॥१९॥
सुखिया सब संसार है, खावै औ सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै औ रोवै ॥२०॥
नाम बियोगी बिकल तन, ताहि न चीन्है कोय।
तम्बोली का पान ज्यौं, दिन दिन पीला होय ॥२१॥
नैन हमारे बावरे, छिन छिन लोड़ैं[3] तुज्झ।
ना तुम मिलो न मैं सुखी, ऐसी बेदन मुज्झ ॥२२॥
माँस गया पिंजर रहा, ताकन लागे काग।
साहिब अजहुँ न आइया, मंद हमारे भाग ॥२३॥
बिरहा सेती मति अड़ै, रे मन मोर सुजान।
हाड़ मास सब खात है, जीवत करै मसान ॥२४॥
अंदेसा नहिं भागसी, संदेसा कहि आय।
कै आवै पिय आपही, कै मोहिं पास बुलाय ॥२५॥

---

(१) उखाड़ कर। (२) लकड़ी का चूरा या बुरादा। (३) चाहैं।

आय सकौं नहिं तोहिं पै, सकौं न तुज्झ बुलाय।
जियरा यौं लय होयगा, बिरह तपाय तपाय ॥२६॥
अँखियाँ प्रेम बसाइया, जनि जाने दुखदाय।
नाम सनेही कारने, रो रो रात बिताय ॥२७॥
जोई आँसू सजन जन, सोई लोक बहाहि।
जो लोचन लोहू चुवै, तौ जानौं हेतु हियाहि ॥२८॥
हवस करै पिय मिलन की, औ सुख चाहै अंग।
पीड़ सहे बिनु पदमिनी, पूत न लेत उछंग[१] ॥२९॥
बिरहिनि ओदी लाकड़ी, सपचे औ धुँधुआय।
छूट पड़ौं या बिरह से, जो सिगरो जरि जाय ॥३०॥
तन मन जोबन यौं जला, बिरह अगिनि से लागि।
मिर्तक पीड़ा जानही, जानैगी वथा आगि ॥३१॥
फाड़ि पटोली[२] धुज करौं, कामलड़ो[३] फहराय।
जेहिं जेहिं भेषे पिय मिलै, सोइ सोइ भेष कराय ॥३२॥
परबत परबत मैं फिरी, नैन गँवायो रोय।
सो बूटी पायौं नहीं, जा तैं जीवन होय ॥३३॥
बिरह जलंती मैं फिरौं, मो बिरहिनि को दुक्ख।
छाँह न बैठौं डरपती, मत जलि उट्ठै रुक्ख[४] ॥३४॥
चूड़ी पटकौं पलँग से, चोली लावौं आगि।
जा कारन यह तन धरा, ना सूती गल लागि ॥३५॥
अंबर[५] कुज्जा[६] करि लिया, गरजि भरे सब ताल।
जिन तैं प्रीतम बीछुरा, तिन का कौन हवाल ॥३६॥
कागा करँक[७] ढँढोलिया[८], मुट्ठी इक लिया हाड़।
जा पिंजर बिरहा बसै, माँस कहाँ तैं काढ़ ॥३७॥

(१) उत्साह से। (२) दुपट्टा। (३) कमरी यानी छोटा कम्बल। (४) पेड़। (५) आकाश। (६) मिट्टी का भाँडा। (७) हड्डी की ठठरी। (८) ढूँढ़ा।

रक्त माँस सब भखि गया, नेक न कीन्ही कानि[१]।
अब बिरहा कूकर भया, लागा हाड़ चबान ॥३८॥

बिरहा भयो बिछावना, ओढ़न बिपति बिजोग।
दुख सिरहाने पायतन[२], कैान बना संजोग ॥३९॥

बिरहिनि बिरह जगाइया, पैठि ढँढोरै छार[३]।
मत कोइ कोइला ऊबरै, जारै दूजी बार ॥४०॥

तन मन जोबन जारि के, भस्म करी है देँह।
उठी कबीरा बिरहिनी, अजहुँ ढँढोरै खेह[३] ॥४१॥

अंक भरी भरि भेँटिये, मन नहिँ बाँधै धीर।
कह कबीर ते क्या मिले, जब लगि दोय सरीर ॥४२॥

जो जन बिरही नाम के, झीना पिंजर तासु।
नैन न आवै नीँदड़ी, अंग न जामै मासु ॥४३॥

नाम बियोगी बिकल तन, कर छूओ मत कोय।
छूवत ही मरि जाइगो, तालाबेली[४] होय ॥४४॥

जो जन भीँजे नाम रस, बिगसित कबहुँ न मुक्ख।
अनुभव भावन दरसही, ते नर सुक्ख न दुक्ख[५] ॥४५॥

कबीर चिनगी बिरह की, मो तन पड़ी उड़ाय।
तन जरि धरती हू जरी, अंबर जरिया जाय ॥४६॥

दीपक पावक आनिया, तेल भी लाया संग।
तीनोँ मिलि करि जोइया[६], उड़ि उड़ि मिलै पतंग ॥४७॥

हिरदे भीतर दव[७] बलै, धुवाँ न परगट होय।
जा के लागी सो लखै, की जिन लाई सोय ॥४८॥

---

(१) लिहाज़, मुरौवत। (२) पैताने। (३) राख को ढँढोलती है। (४) तड़प, बेकली। (५) जो भक्त नाम रस में पगे हैं और जिन का अनुभव जागा है उनको बाहरी हर्ष नहीं होता और दुख सुख के परे हो जाते हैं। (६) संजोया। (७) आग।

झाल उठी झोली जली, खप्पर फूटम फूट।
हंसा जोगी चलि गया, आसन रही भभूत ॥४९॥
आगे आगे दव चले, पाछे हरियर होय[1]।
बलिहारी वा वृच्छ[2] की, जड़ काटे फल जोय ॥५०॥
कबीर सुपने रैन के, पड़ा कलेजे छेक।
जब सोवौँ तब दुइ जना, जब जागौँ तब एक ॥५१॥
पावक रूपी नाम है, सब घट रहा समाय।
चित चकमक चहुटै[3] नहीं, धूवाँ ह्वै ह्वै जाय ॥५२॥
बिरहा मो सो यों कहै, गाढ़ा[4] पकड़ो मोहिं।
चरन कमल की मौज में, ले पहुँचाऔं तोहिं ॥५३॥
सबही तरु तर जाइ के, सब फल लीन्हो चीख।
फिरि फिरि मँगत कबीर है, दरसनही की भीख ॥५४॥
बिरह प्रबल दल साजि के, घेर लियो मोहिं आय।
नहिं मारै छाड़ै नहीं, तलफ तलफ जिय जाय ॥५५॥
पिय बिन जिय तरसत रहै, पल पल बिरह सताय।
रैन दिवस मोहिं कल नहीं, सिसक सिसक जिय जाय॥५६॥
जो जन बिरही नाम के, तिन की गति है येह।
देही से उद्यम करैं, सुमिरन करैं बिदेह ॥५७॥
साइँ सेवत जल गई, मास न रहिया देँह।
साइँ जब लगि सेइहौं, यह तन होय न खेह ॥५८॥
निस दिन दाझै बिरहिनी, अंतरगत की लाय[5]।
दास कबीरा क्यों बुझै, सतगुरु गये लगाय ॥५९॥
पीर पुरानी बिरह की, पिंजर पीर न जाय।
एक पीर है प्रीति की, रही कलेजे छाय ॥६०॥

---

(१) झाड़ी को जला देने से थोड़े दिन में वह खूब हरी उगती है। (२) चाह। (३) चोट लगाना। (४) मजबूत। (५) आग।

चोट सतावै बिरह की, सब तन जरजर होय ।
मारनहारा जानही, कै जेहि लागी सोय ॥६१॥

बिरहा बिरहा मत कहो, बिरहा है सुल्तान ।
जा घट बिरह न संचरै, सो घट जान मसान ॥६२॥

देखत देखत दिन गया, निस भी देखत जाय ।
बिरहिनि पिय पावै नहीं, बेकल जिय घबराय ॥६३॥

गलौं तुम्हारे नाम पर, ज्यौं आटे में नोन ।
ऐसा बिरहा मेल करि, नित दुख पावै कौन ॥६४॥

सो दिन कैसा होयगा, गुरू गहैंगे बाँहि ।
अपना करि बैठावहीं, चरन कँवल की छाँहि ॥६५॥

जो जन बिरही नाम के, सदा मगन मन माँहि ।
ज्यौं दरपन की सुंदरी, किनहूँ पकड़ी नाहिं ॥६६॥

तन भीतर मन मानिया, बाहर कहूँ न लाग ।
ज्वाला तें फिर जल भया, बुझी जलंती आग ॥६७॥

चकई बिछुरी रैन की, आय मिली परभात ।
सतगुरु से जो बीछुरे, मिलैं दिवस नहिं रात ॥६८॥

बासर सुख नहिं रैन सुख, ना सुख सुपने माँहि ।
सतगुरु से जो बीछुरे, तिन को धूप न छाँहि ॥६९॥

बिरहिनि उठिउठि भुइँ परै, दरसन कारन राम ।
मूए पीछे देहुगे, सो दरसन केहि काम ॥७०॥

मूए पीछे मत मिलौ, कहै कबीरा राम ।
लोहा माटी मिलि गया, तब पारस केहि काम ॥७१॥

यह तन जारि भसम करौं, धूवाँ होय सुरंग ।
कबहुक गुरु दाया करैं, बरसि बुझावैं अंग ॥७२॥

यह तन जारि के मसि[1] करौं, लिखौं गुरू का नाँव।
करौं लेखनी[2] करम को, लिखि लिखि गुरू पठाँव ॥७३॥
बिरहा पूत लोहार का, घँवै[3] हमारी देह।
कोइला ह्वै नहिं छूटिहै, जब लगि होय न खेह ॥७४॥
बिरहिनि थी तो क्यों रही, जरी न पिउ के साथ।
रहि रहि मूढ़ गहेलरी, अब क्यों मींजै हाथ ॥७५॥
लकरी जरि कोइला भई, मो तन अजहूँ आगि।
बिरह कीं ओदी लाकरी, सिलगि सिलगि उठि जागि॥७६
बिरह बिथा बैराग की, कही न काहू जाय।
गूँगा सुपना देखिया, समझि समझि पछिताय ॥७७॥
सब रग ताँत रबाब[4] तन, बिरह बजावै नित्त।
और न कोई सुनि सकै, कै साईं कै चित्त ७८॥
तूँ मति जानै बीसरूँ, प्रीति घटै मम चित्त।
मरूँ तो तुम सुमिरत मरूँ, जिऊँ तो सुमिरूँ नित्त ॥७९॥
मो बिरहिनि का पिउ मुआ, दाग न दीया जाय।
मासहिं गलि गलि भुइँ परा, करँक रही लपटाय ॥८०॥
भली भई जो पिउ मुआ, नित उठि करता रार।
छूटी गल की फाँसरी, सोऊँ पाँव पसार ॥८१॥
जीव बिलंबा पीव से, अलख लख्यो नहिं जाय।
साहिब मिलै न झल बुझै, रही बुझाय बुझाय ॥८२॥
जीव बिलंबा पीव से, पिय जो लिया मिलाय।
लेख समान[5] अलेख में, अब कछु कहा न जाय ॥८३॥
आगि लगी आकास में, झरि झरि परै अँगार।
कबिरा जरि कंचन भया, काँच भया संसार ॥८४॥

(१) सियाही। (२) कलम। (३) धौंकै। (४) एक बाजा जो मुँह से बजाया जाता है। (५) समाया।

बिरह अगिन तन मन जला, लागि रहा तत जीव।
के वा जानै बिरहिनी, कै जिन भेंटा पीव ॥८५॥
बिरह कुल्हारी तन बहै[1], घाव न बाँधे रोह।
मरने का संसय नहीं, छूटि गया भ्रम मोह ॥८६॥
कबीर बैद बुलाइया, पकरि के देखी बाँहि।
बैद न बेदन जानई, करक करेजे माहिं ॥८७॥
जाहु बैद घर आपने, तेरा किया न होय।
जिन या बेदन निर्मई[2], भला करैगा सोय ॥८८॥
जाहु मीत घर आपने, बात न पूछे कोय।
जिन यह भार लदाइया, निरबाहैगा सोय ॥८९॥

प्रेम का अंग।

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै भुँइ धरै, तब पैठै घर माहिं ॥१॥
सीस उतारै भुइँ धरै, ता पर राखै पाँव।
दास कबीरा यों कहै, ऐसा होय तो आव ॥२॥
प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाय ॥३॥
प्रेम पियाला जो पियै, सीस दछिना देय।
लोभी सीस न दे सकै, नाम प्रेम का लेय ॥४॥
प्रेम पियाला भरि पिया, राचि रहा गुरु ज्ञान।
दिया नगारा सबद का, लाल खड़े मैदान ॥५॥
छिनहिं चढ़ै छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय।
अघट[3] प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय ॥६॥

---

(१) चले। (२) उपजाई, पैदा की। (३) जो कभी घटता नहीं।

आया प्रेम कहाँ गया, देखा था सब कोय।
छिन रोवै छिन मैं हँसै, सो तो प्रेम न होय ॥७॥

प्रेम प्रेम सब कोइ कहै, प्रेम न चीन्है कोय।
आठ पहर भीना रहै, प्रेम कहावै सोय ॥८॥

प्रेम पियारे लाल सोँ, मन दे कीजै भाव।
सतगुरु के परसाद से, भला बना है दाव ॥९॥

जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं हम नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, ता मैं दो न समाहिं ॥१०॥

जा घट प्रेम न संचरै[1], सो घट जानु मसान।
जैसे खाल लोहार की, साँस लेत बिन प्रान ॥११॥

आया बगूला[2] प्रेम का, तिनका उड़ा अकास।
तिनका तिनका से मिला, तिनका तिनके पास ॥१२॥

प्रेम बिकंता मैं सुना, माथा साटे[3] हाट[4]।
बूझत बिलँब न कीजिये, तत्छिन दीजै काट ॥१३॥

प्रेम बिना धीरज नहीं, बिरह बिना बैराग।
सतगुरु बिन जावै नहीं, मन मनसा का दाग ॥१४॥

प्रेम तो ऐसा कीजिये, जैसे चन्द चकोर।
घींच[5] टूटि भुइँ माँ गिरै, चितवै वाही ओर ॥१५॥

अधिक सनेही माछरी, दूजा अलप सनेह।
जबहीं जल तेँ बीछुरै, तबही त्यागै देह ॥१६॥

सौ जोजन साजन बसै, मानो हृदय मँझार।
कपट सनेहि आँगने, जानु समुंदर पार ॥१७॥

यह तत वह तत एक है, एक प्रान दुइ गात।
अपने जिय से जानिये, मेरे जिय की बात ॥१८॥

---

(१) बसै। (२) बवंडर। (३) बदले। (४) बाज़ार। (५) गर्दन।

हम तुम्हरो सुमिरन करैं, तुम मोहिं चितवौ नाहिं।
सुमिरन मन की प्रीति है, सो मन तुमहीं माहिं ॥१९॥
मेरा मन तो तुझ से, तेरा मन कहुँ और।
कह कबीर कैसे बनै, एक चित्त दुइ ठौर ॥२०॥
ज्यों मेरा मन तुझ से, यों तेरा जो होय।
अहरन ताता लोह ज्यौं, संधि लखै ना कोय ॥२१॥
प्रीति जो लागी घुलि गई, पैठि गई मन माहिं।
रोम रोम पिउ पिउ करै, मुख की सरधा नाहिं ॥२२॥
जो जागत सो स्वप्न में, ज्यौं घट भीतर स्वास।
जो जन जा को भावता, सो जन ता के पास ॥२३॥
सोना सज्जन साधु जन, टूटि जुटै सौ बार।
दुर्जन कुम्भ कुम्हार का, एकै धका दरार[1] ॥२४॥
प्रीति ताहि से कीजिये, जो आप समाना होय।
कबहुँक जो अवगुन परै, गुनहीं लहै समोय ॥२५॥
प्रेम बनिज नहिं करि सकै, चढ़ै न नाम की गैल।
मानुष केरी खालरी, ओढ़ि फिरै ज्यों बैल ॥२६॥
जहाँ प्रेम तहँ नेम नहिं, तहाँ न बुधि ब्यौहार।
प्रेम मगन जब मन भया, तब कौन गिनै तिथि बार ॥२७॥
प्रेम पाँवरी पहिरि कै, धीरज काजर देइ।
सील सिंदूर भराइ कै, यों पिय का सुख लेइ ॥२८॥
प्रेम छिपाया ना छिपै, जा घट परघट होय।
जो पै मुख बोलै नहीं, तो नैन देत हैं रोय ॥२९॥

---

(१) सज्जन और साधु जन सोने के समान हैं कि सौ बार टूटने पर जुट जाते हैं, पर दुष्ट जन मट्टी के घड़े के सदृश होते हैं जिस में एक ही धक्का लगने से दरार पड़ जाती है।

प्रेम भाव इक चाहिये, भेष अनेक बनाय।
भावे गृह में बास कर, भावे वन में जाय ॥३०॥
जोगी जंगम सेवड़ा, संन्यासी दुरवेस।
बिना प्रेम पहुँचे नहीं, दुरलभ सतगुरु देस ॥३१॥
पीया चाहै प्रेम रस, राखा चाहै मान।
एक म्यान में दो खड़ग, देखा सुना न कान ॥३२॥
प्रेमी ढूँढ़त मैं फिरौं, प्रेमी मिलै न कोय।
प्रेमी से प्रेमी मिलै, गुरु भक्ती दृढ़ होय ॥३३॥
कबीर प्याला प्रेम का, अंतर लिया लगाय।
रोम रोम में रमि रहा, और अमल क्या खाय ॥३४॥
कबीर हम गुरु रस पिया, बाकी रही न छाक[1]।
पाका कलस कुम्हार का, बहुरि न चढ़सी चाक ॥३५॥
नाम रसायन अधिक रस, पोवत अधिक रसाल[2]।
कबीर पावन दुलभ है, माँगै सीस कलाल[3] ॥३६॥
कबीर भाठी प्रेम की, बहुतक बैठे आय।
सिर सौंपै सो पीवसी, नातर[4] पिया न जाय ॥३७॥
यह रस महँगा पिवै सो, छाड़ि जीव की बान।
माथा साटे[5] जो मिलै, तौ भी सस्ता जान ॥३८॥
पिया रस पिया सो जानिये, उतरै नहीं खुमार।
नाम अमल माता रहै, पियै अमी रस सार ॥३९॥
सबै रसायन मैं किया, प्रेम समान न कोय।
रति इक तन में संचरै, सब तन कंचन होय ॥४०॥
सागर उमड़ा प्रेम का, खेवटिया कोइ एक।
सब प्रेमी मिलि बूड़ते, जो यह नहिं होता टेक ॥४१॥

---

(१) इच्छा। (२) अच्छा, मीठा। (३) शराब बनाने वाला। (४) नहीं तो। (५) बदले।

यही प्रेम निरबाहिये, रहनि किनारे बैठि।
सागर तें न्यारा रहा, गया लहरि में पैठि ॥४२॥
अमृत केरी मोटरी, राखी सतगुरु छोरि।
आप सरीखा जो मिलै, ताहि पिलावैं घोरि ॥४३॥
अमृत पीवै ते जना, सतगुरु लागा कान।
वस्तु अगोचर मिलि गई, मन नहिं आवै आन ॥४४॥
साधू सीप समुद्र के, सतगुरु स्वाँती बुंद।
तृषा गई इक बुंद से, क्या ले करौं समुंद ॥४५॥
मिलना जग में कठिन है, मिलि बिछुड़ो जनि कोय।
बिछुड़ा सज्जन तेहि मिलै, जिन माथे मनि होय ॥४६॥
जोइ मिलै सो प्रीति में, और मिलै सब कोय।
मन से मनसा ना मिलै, तो देह मिले का होय ॥४७॥
जो दिल दिलही में रहै, सो दिल कहूँ न जाय।
जो दिल दिल से बाहिरा, सो दिल कहाँ समाय ॥४८॥
जैसी प्रीति कुटुम्ब से, तैसिहु गुरु से होय।
कहै कबीर वा दास का, पला न पकड़ै कोय ॥४९॥
नैनों की करि कोठरी, पुतली पलँग बिछाय।
पलकों की चिक डारि कै, पिय को लिया रिझाय ॥५०॥
जब लगि मरने से डरै, तब लगि प्रेमी नाहिं।
बड़ी दूर है प्रेम घर, समुझि लेहु मन माहिं ॥५१॥
पिय का मारग कठिन है, खाँड़ा हो जैसा।
नाचन निकसी बापुरी, फिर घूँघट कैसा ॥५२॥
पिय का मारग सुगम है, तेरा चलन अनेड़।
नाच न जानै बापुरी, कहै आँगना टेढ़ ॥५३॥
यह तो घर है प्रेम का, मारग अगम अगाध।
सीस काटि पग तर धरै, तब निकट प्रेम का स्वाद ॥५४॥

प्रेम भक्ति का गेह है, ऊँचा बहुत इकंत।
सीस काटि पग तर धरै, तब पहुँचै घर संत ॥५५॥
सीस काटि पासँग किया, जीव सेर भर लीन्ह।
जो भावै सो आइ ले, प्रेम आगे हम कीन्ह ॥५६॥
प्रेम प्रीति में रचि रहै, मोच्छ मुक्ति फल पाय।
सबद माहिँ तब मिलि रहै, नहिँ आवै नहिँ जाय ॥५७॥
जो तू प्यासा प्रेम का, सीस काटि करि गोय।
जब तू ऐसा करैगा, तब कछु होय तो होय ॥५८॥
हरि से तू जनि हेत कर, कर हरिजन से हेत।
माल मुलुक हरि देत है, हरिजन हरिहीं देत ॥५९॥
प्रीति बहुत संसार में, नाना बिधि की सोय।
उत्तम प्रीति सो जानिये, सतगुरु से जो होय ॥६०॥
गुनवंता औ द्रव्य की, प्रीति करै सब कोय।
कबीर प्रीति सो जानिये, इन तेँ न्यारी होय ॥६१॥
कबीर ता से प्रीति करु, जो निरबाहै ओर।
बनै तो बिबिधि न राचिये, देखत लागै खोर ॥६२॥
कहा भयो तन बीछुरे, दूरि बसे जे बास।
नैनाहीं अंतर परा, प्रान तुम्हारे पास ॥६३॥
जो है जा का भावता, जब तब मिलिहै आय।
तन मन ता को सौंपिये, जो कबहूँ छाड़ि न जाय ॥६४॥
जल मेँ बसै कमोदिनी, चंदा बसै अकास।
जो है जा का भावता, सो ताही के पास ॥६५॥
तन दिखलावै आपना, कछू न राखै गोय।
जैसी प्रीति कमोदिनी, ऐसो प्रीति जो होय ॥६६॥
सही हेत है तासु का, जा के सतगुरु टेक।
टेक निबाहै देह भरि, रहै सबद मिलि एक ॥६७॥

पासा पकड़ा प्रेम का, सारी[1] किया सरीर।
सतगुरु दाव बताइया, खेलै दास कबीर ॥६८॥
खेल जो मँडा खिलाड़ि से, आनँद बढ़ा अघाय।
अब पासा काहू परै, प्रेम बँधा जुग जाय ॥६९॥
प्रीतम को पतियाँ लिखूँ, जो कहुँ होय बिदेस।
तन में मन में नैन में, ता को कहा सँदेस ॥७०॥

सतसंग का अंग।

[सज्जन के लिये]

संगति से सुख ऊपजै, कुसंगति से दुख होय।
कहै कबीर तहँ जाइये, साधु संग जहँ होय ॥१॥
संगति कीजे संत की, जिन का पूरा मन।
अनतोले ही देत हैं, नाम सरीखा धन ॥२॥
कबीर संगत साध की, हरै और की व्याधि।
संगत बुरी असाध की, आठो पहर उपाधि ॥३॥
कबीर संगत साध की, जौ की भूसी खाय।
खीर खाँड़ भोजन मिलै, साकट संग न जाय ॥४॥
कबीर संगत साध की, ज्यों गंधी का बास।
जो कछु गंधी दे नहीं, तौ भी बास सुबास ॥५॥
ऋद्धि सिद्धि माँगों नहीं, माँगौं तुम पै येह।
निसु दिन दरसन साध का, कह कबीर मोहिं देय ॥६॥
कबीर संगत साध की, निस्फल कधी न होय।
होसी चंदन बासना, नीम न कहसी कोय ॥७॥

(१) गोट।

कबीर संगत साध की, नित प्रति कीजै जाय।
दुर्मति दूर बहावसी, देसी सुमति बताय ॥८॥

मथुरा भावै द्वारिका, भावै जा जगन्नाथ।
साधसँगति हरिभजन बिनु, कछू न आवै हाथ ॥९॥

साध सँगति अंतर पड़ै, यह मति कबहुँ न होय।
कहै कबीर तिहुँ लोक में, सुखी न देखा कोय ॥१०॥

कबीर कलह रु कल्पना, सतसंगति से जाय।
दुख वा से भागा फिरै, सुख में रहै समाय ॥११॥

साधुन के सतसंग तैं, थरहर काँपै देह।
कबहूँ भाव कुभाव तैं, मत मिटि जाय सनेह ॥१२॥

राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय।
जो सुख साधू संग में, सो बैकुंठ न होय ॥१३॥

बंधे को बंधा मिलै, छूटै कौन उपाय।
कर संगति निरबंध की, पल में लेइ छुड़ाय ॥१४॥

जा पल दरसन साधु का, ता पल की बलिहारि।
सत्त नाम रसना बसै, लीजै जनम सुधारि ॥१५॥

ते दिन गये अकारथी, संगति भई न संत।
प्रेम बिना पसु जीवना, भक्ति बिना भगवंत ॥१६॥

कबीर लहर समुद्र की, निस्फल कधी न जाय।
बगुला परख न जानई, हंसा चुगि चुगि खाय ॥१७॥

जा घर गुरु की भक्ति नहिँ, संत नहीं मिहमान।
ता घर जम डेरा दिया, जीवत भये मसान ॥१८॥

कबीर ता से संग करु, जो रे भजै सत नाम।
राजा राना छत्रपति, नाम बिना बेकाम ॥१९॥

कबीर मन पंछी भया, भावै तहवाँ जाय।
जो जैसी संगति करै, सो तैसा फल खाय ॥२०॥

कबीर चंदन के ढिंगे, बेधा ढाक पलास।
आप सरीखा करि लिया, जो था वा के पास ॥२१॥
कबीर खाई कोट की, पानी पिवै न कोय।
जाइ मिलै जब गंग से, सब गंगोदक होय ॥२२॥
एक घड़ी आधी घड़ी, आधी हूँ से आध।
कबीर संगति साध की, कटै कोटि अपराध ॥२३॥
घड़िहू को आधी घड़ी, भाव भक्ति में जाय।
सतसंगति पल हो भली, जम का धक्का न खाय ॥२४॥

[दुर्जन के लिये]

संगति भई तो क्या भया, हिरदा भया कठोर।
नौ नेजा पानी चढ़ै, तऊ न भीजै कोर ॥२५॥
हरिया जानै रूखड़ा, जो पानी का नेह।
सूखा काठ न जान ही, केतहु बूड़ा मेह ॥२६॥
कबीर मूढ़क प्रानियाँ, नखसिख पाखर आहि।
बाहनहारा क्या करै, बान न लागै ताहि ॥२७॥
पसुवा से पाला परयो, रहु रहु हिया न खीज।
ऊसर बीज न ऊगसी, घालै दूना बीज ॥२८॥
साखी सबद बहुत सुना, मिटा न मन का दाग।
संगति से सुधरा नहीं, ता का बड़ा अभाग ॥२९॥
चंदन परसा बावना, बिष ना तजै भुवंग।
यह चाहै गुन आपना, कहा करै सतसंग ॥३०॥
कबीर चंदन के निकट, नीम भी चंदन होय।
बूड़े बाँस बड़ाइया, यों जनि बूड़ो कोय ॥३१॥

चंदन जैसा साध है, सर्पहिँ सम संसार।
वा के अँग लपटा रहै, भाजै नाहिँ बिकार ॥३२॥
भुवँगम बास न बेधई, चंदन दोप न लाय।
सब अँग तो बिष से भरा, अमृत कहाँ समाय ॥३३॥
सत्त नाम रटिबो करै, निसु दिन साधुन संग।
कहे जो कौन बिचार तेँ, नाहीँ लागत रंग ॥३४।
मन दीया कहुँ औरही, तन साधुन के संग।
कहै कबीर कोरी गजी, कैसे लागै रंग ॥३५॥

कुसंग का अंग।

जानि बूझि साची तजै, करै झूठ से नेह।
ता की संगति हे प्रभू, सपनेहू मत देह ॥१॥
काँचा सेती मत मिलै, पाका सेती बान।
काँचा सेती मिलत हो, होय भक्ति मैँ हान ॥२॥
तोहि पीर जो प्रेम की, पाका सेती खेल।
काँची सरसोँ पेरि कै, खली भया ना तेल ॥३॥
कुल टूटा काँची परी, सरा न एकौ काम।
चौरासी बासा भया, दूरि परा सतनाम ॥४॥
दाग जो लागा नील का, सौ मन साबुन धोय।
कोटि जतन परबोधिये, कागा हंस न होय ॥५॥
मूरख के समुझावने, ज्ञान गाँठि को जाय।
कोइला होय न ऊजला, सौ मन साबुन लाय ॥६॥
लहसुन से चंदन डरै, मत रे बिगारै बास।
निगुरा से सगुरा डरै, योँ डरपै जग से दास ॥७॥

संसारी साकट भला, कन्या क्वारी माय।
साधु दुराचारी बुरा, हरिजन तहाँ न जाय ॥८॥
साधु भया तो क्या भया, माला पहिरी चार।
ऊपर कली[1] लपेटि कै, भीतर भरी भँगार ॥९॥
कबीर कुसँग न कीजिये, लोहा जल न तिराय।
कदली[2] सीप भुवंग मुख, एक बूँद त्रिभाय ॥१०॥
उज्जल बूँद अकास की, परि गई भूमि बिकार।
मूल बिना ठामा[3] नहीं, बिन संगति भौ छार ॥११॥
हरिजन सेती रूसना, संसारी से हेत।
ते नर कधी न नीपजैं, ज्यों कालर[4] का खेत ॥१२॥
गिरिये पर्बत सिखर तें, परिये धरनि मँझार।
मूरख मित्र न कीजिये, बूड़ौ कालो धार ॥१३॥
मारी मरै कुसंग की, ज्यों केला ढिग बेरि।
वह हालै वह चीरई[5], साकट संग निबेरि ॥१४॥
केला तबहिं न चेतिया, जब ढिग जागी बेरि।
अब के चेते क्या भया, काँटों लीन्हा घेरि ॥१५॥
कबीर कहते क्यों बनै, अनबनता के संग।
दीपक को भावै नहीं, जरि जरि मरै पतंग ॥१६॥
ऊँचे कुल कहा जनमिया, जो करनी ऊँचि न होय।
कनक कलस मद से भरा, साधन निंदा सोय ॥१७॥

सूक्ष्म मार्ग का अंग।

उत तें कोई न बाहुरा, जा से बूझूँ धाय।
इत तें सब ही जात हैं, भार लदाय लदाय ॥१॥

(१) कलई। (२) केला। (३) ठौर, ठिकाना। (४) रेहार यानी रेह का।
(५) मुरझाय।

उत तैं सतगुरु आइया, जा की बुधि है धीर।
भवसागर के जीव को, खेइ लगावैं तीर ॥२॥

गागर ऊपर गागरी, चोले ऊपर द्वार।
सूली ऊपर साँथरा, जहाँ बुलावै यार ॥३॥

कौन सुरति लै आवई, कौन सुरति लै जाय।
कौन सुरति है इस्थिरे, सो गुरु देहु बताय ॥४॥

बास[1] सुरति लै आवई, सब्द सुरति लै जाय।
परिचय सुति है इस्थिरे, सो गुरु दई बताय ॥५॥

जा कारन मैं जाय था, सो तो मिलिया आय।
साईं तैं सन्मुख भया, लागि कबीरा पाँय ॥६॥

जो आवै तो जाय नहिँ, जाय तो आवै नाहिँ।
अकथ कहानी प्रेम की, समुझि लेहु मन माहिँ ॥७॥

कौन देस कहँ आइया, जानै कोई नाहिँ।
वह मारग पावै नहीँ, भूलि परै येहि माँहि ॥८॥

हम वासी अमरावती, टारे टूरे टाट।
आवन होय तो आइयो, सूली ऊपर बाट ॥९॥

सूली ऊपर घर करै, बिष का करै अहार।
ता का काल कहा करै, जो आठ पहर हुसियार ॥१०॥

यार बुलावै भाव से, मो पै गया न जाय।
धन मैली पिउ ऊजला, लागि न सकौँ पाँय ॥११॥

नाँव न जानै गाँव का, बिन जाने कित जाँव।
चलते चलते जुग भया, पाव कोस पर गाँव ॥१२॥

सतगुरु दीन दयाल हैं, दया करी मोहिँ आय।
कोटि जनम का पंथ था, पल मैं पहुँचा जाय ॥१३॥

---

(१) बासना।

अगम पंथ मन थिर रहै, बुद्धि करै परबेस ।
तन मन धन सब छाड़ि कै, तब पहुँचै वा देस ॥१४॥
सब को पूछत मैं फिरा, रहन कहै नहिं कोय ।
प्रीति न जोरै गुरू से, रहन कहाँ से होय ॥१५॥
चलन चलन सब कोइ कहै, मोहिं अँदेसा और ।
साहिब से परिचय नहीं, पहुँचैंगे केहि ठौर ॥१६॥
कबीर मारग कठिन है, कोई सकै न जाय ।
गया जो सो बहुरै नहीं, कुसल कहै को आय ॥१७॥
कबीर का घर सिखर पर, जहाँ सिलहिली गैल ।
पाँव न टिकै पपीलि[1] का, पंडित लादे बैल ॥१८॥
जहाँ न चींटी चढ़ि सकै, राई ना ठहराय ।
मनुवाँ तहँ लै राखिया, तहईं पहुँचे जाय ॥१९॥
कबीर मारग कठिन है, सब मुनि बैठे थाकि ।
तहाँ कबीरा चढ़ि गया, गहि सतगुरु की साखि[2] ।२०॥
सुर नर थाके मुनि जना, उहाँ न कोई जाय ।
मोटा[3] भाग कबीर का, तहाँ रहा घर छाय ॥२१॥
सुर नर थाके मुनि जना, थाके बिस्नु महेस ।
तहाँ कबीरा चढ़ि गया, सतगुरु के उपदेस ॥२२॥
कबीर गुरु हथियार करि, कूड़ा गली निवारु ।
जो जो पंथै चालना, सो सो पंथ सँभारु ॥२३॥
अगम्म हूँ तैं अगम है, अपरम्पार अपार ।
तहँ मन धीरज क्योँ धरै, पंथ खरा निरधार ॥२४॥
बिन पाँवन की राह है, बिन बस्ती का देस ।
बिना पिंड का पुरुष है, कहै कबीर सँदेस ॥२५॥

---

(१) चींटी । (२) भरोसा । (३) बड़ा ।

जेहि पैंड़े पंडित गया, तिस ही गही वहीर[१]।
औघट घाटी नाम की, तहँ चढ़ि रहा कबीर ॥२६॥

घाटहि पानी सब भरै, औघट भरै न कोय।
औघट घाट कबीर का, भरै सो निर्मल होय ॥२७॥

बाट बिचारी क्या करै, पंथि न चलै सुधार।
राह आपनी छाड़ि कै, चलै उजाड़ उजाड़ ॥२८॥

कहँ तेँ तुम जो आइया, कौन तुम्हारा ठाम।
कौन तुम्हारी जाति है, कौन पुरुष का नाम ॥२९॥

अमर लोक तेँ आइया, सुख के सागर ठाम।
जाति हमारि अजाति है, अमर पुरुष का नाम ॥३०॥

कहवाँ तेँ जिव आइया, कहवाँ जाय समाय।
कौन डोरि धरि संचरै[२], मोहिँ कहो समुझाय ॥३१॥

सरगुन तेँ जिव आइया, निरगुन जाय समाय।
सुरति डोर धरि संचरै, सतगुरु कहि समुझाय ॥३२॥

ना वहँ आवागवन था, नहिँ धरता आकास।
कबीर जन कहवाँ हते, तब था कोइ न पास ॥३३॥

नाहीँ आवागवन था, नहिँ धरती आकास।
हतो कबीरा दास जन, साहिब पास खवास ॥३४॥

पहुँचैंगे तब कहैंगे, वही देस की सीच[३]।
अबहीँ कहा तड़ागिये[४], बेड़ी पायन बीच ॥३५॥

करता की गति अगम है, चलु गुरु के उनमान।
धीरे धीरे पाँव दे, पहुँचोगे परमान ॥३६॥

प्रान पिंड को तजि चलै, मुआ कहै सब कोय।
जीव छता[५] जामै मरै, सूछम लखै न सोय ॥३७॥

---

(१) लाग, संसार। (२) घुसै, चढ़ै। (३) शीतल स्थान। (४) कूदना, डींग मारना। (५) अछत, मौजूद रहते।

मरिये तो मरि जाइये, छूटि परै जंजार।
ऐसा मरना को मरै, दिन में सौ सौ बार॥३८॥

चितावनी का अंग।

कबीर गर्ब न कीजिये, काल गहे कर केस।
ना जानैं कित मारिहै, क्या घर क्या परदेस॥१॥
आज काल्ह के बीच में, जंगल हुैगा बास।
ऊपर ऊपर हर फिरै, ढोर[1] चरैंगे घास॥२॥
हाड़ जरै ज्यों लाकड़ी, केस जरै ज्यों घास।
सब जग जरता देखि करि, भये कबीर उदास॥३॥
झूँठे सुख को सुख कहैं, मानत हैं मन मोद।
जगत चबेना काल का, कुछ मुख में कुछ गोद॥४॥
कुसल कुसल ही पूछते, जग में रहा न कोय।
जरा[2] मुई ना भय मुआ, कुसल कहाँ से होय॥५॥
पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जाति।
देखत ही छिपि जायगी, ज्यों तारा परभाति॥६॥
निधड़क बैठा नाम बिनु, चेति न करै पुकार।
यह तन जल का बुदबुदा, बिनसत नाहीं बार॥७॥
रात गँवाई सोय करि, दिवस गँवायो खाय।
हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाय॥८॥
कै खाना कै सोवना, और न कोई चीत।
सतगुरु सबद बिसारिया, आदि अंत का मीत॥९॥
यहि औसर चेत्यो नहीं, पसु ज्यों पाली देह।
सत्त नाम जान्यो नहीं, अंत पड़ै मुख खेह॥१०॥

---

(१) चौपाये। (२) वृद्ध अवस्था।

लूटि सकै तो लूटि ले, सत्त नाम भंडार।
काल कंठ तैं पकरिहै, रोकै दसौ दुवार॥११॥
आछे दिन पाछे गये, गुरु से किया न हेत।
अब पछतावा क्या करै, चिड़ियाँ चुग गईं खेत॥१२॥
आज कहै मैं काल्ह भजूँगा, काल्ह कहै फिर काल्ह।
आज काल्ह के करत ही, औसर जासी चाल॥१३॥
काल्ह करै सो आज करु, सबहि साज तेरे साथ।
काल्ह काल्ह तू क्या करै, काल्ह काल के हाथ॥१४॥
काल्ह करै सो आज करु, आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करैगा कब्ब॥१५॥
पाव पलक की सुधि नहीं, करै काल्ह का साज।
काल अचानक मारसी, ज्यौं तीतर को बाज॥१६॥
पाव पलक तो दूर है, मो पै कह्यो न जाय।
ना जानूँ क्या होयगा, पाव बिपल के माँयँ॥१७॥
कबीर नौबति आपनी, दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन[1] यह गली, बहुरि न देखौ आय॥१८॥
जिन के नौबति बाजती, मंगल बँधते बार[2]।
एकै सतगुरु नाम बिनु, गये जनम सब हार॥१९॥
पाँचो नौबति बाजती, होत छतीसो राग।
सो मंदिर खाली पड़ा, बैठन लागे काग॥२०॥
ढोल दमामा गड़गड़ी, सहनाई अरु भेरि[3]।
अवसर चले बजाइ के, है कोइ लावै फेरि॥२१॥
कबीर थोड़ा जीवना, माँड़े बहुत मँडान।
सबहि उभा[4] में लगि रहा, राव रंक सुलतान॥२२॥

---

(१) शहर। (२) वंदनवार। (३) बाजे का नाम। (४) चिंता।

इक दिन ऐसा होयगा, सब से पड़ै बिछोह।
राजा राना छत्रपति, क्योंनहिं सावध[1] होहि ॥२३॥

ऊजड़ खेड़े[2] ठीकरी, गढ़ि गढ़ि गये कुम्हार।
रावन सरिखा चलि गया, लंका का सरदार ॥२४॥

ऊँचा महल चुनावते, करते होड़म होड़।
सुबरन कली ढलावते, गये पलक में छोड़ ॥२५॥

कहा चुनावै मेढ़ियाँ[3], लंबी भीति उसारि[4]।
घर तो साढ़े तीन हथ, घना तो पौने चार[5] ॥२६॥

पाँच तत्त का पूतला, मानुष धरिया नाम।
दिना चार के कारने, फिरि फिरि रोकै ठाम ॥२७॥

कबीर गर्ब न कीजिये, देँही देखि सुरंग।
बिछुरे पै मेला नहीं, ज्योँ केचुली भुजंग ॥२८॥

कबीर गर्ब न कीजिये, अस जोबन को आस।
टेसू फूला दिवस दस, खंखर भया पलास ॥२९॥

कबीर गर्ब न कीजिये, ऊँचा देखि अबास।
काल्ह परौँ भुइँ लेटना, ऊपर जमसी घास ॥३०॥

कबीर गर्ब न कीजिये, चाम लपेटे हाड़।
हय बर ऊपर छत्र तर, तौ भी देवैँ गाड़ ॥३१॥

पक्की खेती देखि करि, गर्बै कहा किसानु।
अजहूँ झोला बहुत है, घर आवै तब जानु ॥३२॥

जेहि घट प्रेम न प्रीति रस, पुनि रसना नहिँ नाम।
ते नर पसु संसार में, उपजि खपे बेकाम ॥३३॥

ऐसा यह संसार है, जैसा सेमर फूल।
दिन दस के ब्यौहार में, झूँठे रंग न भूल ॥३४॥

---

(१) सावधान, होशियार (२) गाँव। (३) मढ़ी, घर। (४) ओसारा। (५) जीव का घर जो शरीर है उसका नाप साढ़े तीन हाथ होता है या बहुत लम्बा हुआ तो पौने चार हाथ।

कबीर धूल सकेलि[1] कै, पुड़ी[2] जो बाँधी येह।
दिवस चार का पेखना, अंत खेह को खेह ॥३५॥

पाँच पहर धंधे गया, तीन पहर रहे सोय।
एको घड़ी न हरि भजे, मुक्ति कहाँ तें होय ॥३६॥

कबीर मंदिर लाख का, जड़िया हीरा लाल।
दिवस चार का पेखना, बिनसि जायगा काल ॥३७॥

सपने सोया मानवा, खोल देखि जो नैन।
जीव परा बहु लूट में, ना कछु लेन न देन ॥३८॥

मरोगे मरि जाहुगे, कोई न लेगा नाम।
ऊजड़ जाइ बसाहुगे, छोड़ि के बसता गाम ॥३९॥

घर रखवाला बाहरा, चिड़िया खाया खेत।
आधा परधा ऊबरै, चेत सकै तो चेत ॥४०॥

कबीर जो दिन आज है, सो दिन नाहीं काल्ह।
चेत सकै तो चेतियो, मीच रही है ख्याल ॥४१॥

माटी कहै कुम्हार को, तूँ क्या रूँदै मोहिं।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं रूँदूँगी तोहिं ॥४२॥

जिन गुरु की चोरी करी, गये नाम गुन भूल।
ते बिधना बादुर[3] रचे, रहे उरधमुख झूल ॥४३॥

सत्त नाम जाना नहीं, लागी मोटी खोरि[4]।
काया हाँड़ी काठ की, ना यह चढ़ै बहोरि ॥४४॥

सत्त नाम जाना नहीं, हूआ बहुत अकाज।
बूड़ेगा रे बापुरा, बड़ोँ बड़ाँ की लाज ॥४५॥

सत्त नाम जाना नहीं, चूके अब की घात।
माटी मलत कुम्हार ज्यों, घनी सहै सिर लात ॥४६॥

---

(१) समेट के। (२) पुड़िया। (३) चमगादड़। (४) सराप।

कबीर या संसार मैं, घना मनुष मतिहीन।
सत्त नाम जाना नहीं, आये टापा[1] दीन्ह ॥४७॥

आया अनआया हुआ, जो राता संसार।
पड़ा भुलावे गाफिला, गये कुबुद्धी हार ॥४८॥

कहा कियो हम आइ के, कहा करैंगे जाइ।
इत के भये न उत्त के, चाले मूल गँवाइ ॥४९॥

कबीर गुरु की भक्ति बिनु, धृग जीवन संसार।
धूवाँ का सा धौलहर[2], जात न लागै बार ॥५०॥

जगतहिं मैं हम राचिया, झूठे कुल की लाज।
तन छीजै कुल बिनसिहै, चढ़े न नाम जहाज ॥५१॥

यह तन काँचा कुंभ[3] है, लिये फिरै था साथ।
टपका[4] लागा फूटिया, कछु नहिं आया हाथ ॥५२॥

पानी का सा बुदबुदा, देखत गया बिलाय।
ऐसे जिउड़ा जायगा, दिन दस ठोली[5] लाय ॥५३॥

कबीर यह तन जात है, सकै तो ठौर लगाव।
कै सेवा कर साध की, कै गुरु के गुन गाव ॥५४॥

काया मंजन क्या करै, कपड़ा धोयम धोय।
उज्जल होइ न छूटसी, सुख नींदड़ी न सोय ॥५५॥

मोर तोर की जेवरी[6], बटि बाँधा संसार।
दास कबीरा क्यौं बँधै, जा के नाम अधार ॥५६॥

जिन जाना निज गेह[7] को, सो क्यौं जोड़ै मित्त[8]।
जैसे पर घर पाहुना, रहै उठाये चित्त ॥५७॥

आये हैं सो जायँगे, राजा रंक फकीर।

---

(१) अँधेरी। (२) घरहरा। (३) घड़ा मिट्टी का। (४) ठोकर। (५) ठठोली, हँसी। (६) रस्सी। (७) घर। (८) मित्र।

एक सिँघासन चढ़ि चले, इक बाँधे जात जँजीर ॥५८॥
जो जानहु जिव आपना, करहु जीव को सार।
जियरा ऐसा पाहुना, मिलै न दूजी बार ॥५९॥
बनिजारा का बैल ज्योँ, टाँडा[1] उतर्यो आय।
एकन कौ दूना भया, इक चला मूल गँवाय ॥६०॥
कबीर यह तन जातु है, सकै तो राखु बहोर।
खाली हाथौँ वे गये, जिनके लाख करोर ॥६१॥
आस पास जोधा खड़े, सबै बजावैँ गाल।
मंझ महल से लै चला, ऐसा काल कराल ॥६२॥
हाँकोँ[2] परबत फाटते, समुँदर घूँट भराय।
ते मुनिवर धरती गले, क्या कोइ गर्ब कराय ॥६३॥
या दुनिया मेँ आइ कै, छाँड़ि देइ तू ऐँठ।
लेना होय सो लेइ लै, उठी जात है पैँठ ॥६४॥
यह दुनिया दुइ रोज की, मत कर या से हेत।
गुरु चरनन से लागिये, जो पूरन सुख देत ॥६५॥
तन सराय मन पाहरू[3], मनसा उतरी आय।
कोउ काहू का है नहीँ, (सब) देखा ठोँक बजाय ॥६६॥
मैँ मैँ बड़ी बलाय है, सको तो निकसो भागि।
कहै कबीर कब लगि रहै, रूई लपेटी आगि ॥६७॥
कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठगे सुख ऊपजै, और ठगे दुख होय ॥६८॥
मौत बिसारी बावरे, अचरज कीया कौन।
तन माटी मिलि जायगा, ज्योँ आटे मेँ नोन ॥६९॥
जनम मरन दुख याद कर, कूड़े काम निवार।
जिन जिन पंथौँ चालना, सोई पंथ सम्हार ॥७०॥

---

(१) लदनी। (२) आवाज़ से। (३) पहरेदार।

कबीर खेत किसान का, मिरगौं खाया झाड़।
खेत बिचारा क्या करै, जो धनी करै नहिं बाड़[1] ॥७१॥
बासर[2] सुख ना रैन सुख, ना सुख सपने माहिं।
जे नर बिछुड़े नाम से, तिन को धूप न छाहिं ॥७२॥
कबीर सोता क्या करै, क्यौं नहिं देखै जाग।
जा के सँग से बीछुड़ा, वाही के सँग लाग ॥७३॥
कबीर सोता क्या करै, उठि कै जपो दयार[3]।
एक दिना है सोवना, लम्बे पाँव पसार ॥७४॥
कबीर सोता क्या करै, सोते होय अकाज।
ब्रह्मा का आसन डिगा, सुनो काल की गाज ॥७५॥
अपने पहरे जागिये, ना पड़ि रहिये सोय।
ना जानौं छिन एक में, किस का पहरा होय ॥७६॥
चकवो बिछुरी रैन की, आनि मिलै परभात।
जे नर बिछुरे नाम से, दिवस मिलैं नहिं रात ॥७७॥
दीन गँवायो दुनी सँग, दुनी न चाली साथ।
पाँव कुल्हाड़ी मारिया, मूरख अपने हाथ ॥७८॥
कुल खोये कुल ऊबरै, कुल राखे कुल जाय।
नाम अकुल[4] को भेंटिया, सब कुल गया बिलाय ॥७९॥
दुनिया के धोखे मुवा, चाला कुल की कानि।
तब क्या कुल की लाज है, जब लै धरैं मसान ॥८०॥
कुल करनी के कारने, हंसा गया बिगोय।
तब क्या कुल की लाज है, चार पाँव का होय ॥८१॥
उज्जल पहिरे कापड़े, पान सुपारी खाहिं।
सो इक गुरु की भक्ति बिनु, बाँधे जमपुर जाहिं ॥८२॥

---

(१) टट्टी जो बचाव के लिये खेत के चारों ओर लगाते हैं, रक्षा। (२) दिन। (३) दयाल। (४) कुल से रहित।

मलमल खासा पहिरते, खाते नागर पान।
ते भी होते मानवी, करते बहुत गुमान ॥८३॥
गोफन[1] माहीं पौढ़ते, परिमल[2] अंग लगाय।
ते सुपने दीसैं नहीं, देखत गये बिलाय ॥८४॥
मेरा संगी कोइ नहीं, सबै स्वारथी लोय।
मन परतीति न ऊपजै, जिव बिस्वास न होय ॥८५॥
कबीर बेड़ा[3] जरजरा, फूटे छेद हजार।
हरुए हरुए[4] तरि गये, बूड़े जिन सिर भार ॥८६॥
डागल ऊपर दौड़ना, सुख नींदड़ी न सोय।
पुन्नैं पाया दिवसड़ा, ओछी ठौर न खोय ॥८७॥
मैं भँवरा तोहिं बरजिया, बन बन बास न लेय।
अटकैगा कहुँ बेल से, तड़पि तड़पि जिय देय ॥८८॥
बाड़ी के बिच भँवर था, कलियाँ लेता बास।
सो तो भँवरा उड़ि गया, तजि बाड़ी की आस ॥८९॥
दुनियाँ सेती दोस्ती, होय भजन में भंग।
एकाएकी गुरू से, कै साधन कौ संग ॥९०॥
भय बिनु भाव न ऊपजै, भय बिनु होय न प्रीति।
जब हिरदे से भय गया, मिटी सकल रस रीति ॥९१॥
भय से भक्ति करै सबै, भय से पूजा होय।
भय पारस है जीव को, निर्भय होय न कोय ॥९२॥
डर करनी डर परम गुरु, डर पारस डर सार।
डरत रहै सो ऊबरै, गाफिल खावै मार ॥९३॥
खलक मिला खाली हुआ, बहुत किया बकबाद।
बाँझ हिलावै पालना, ता में कौन सवाद ॥९४॥

(१) गुफा। (२) सुगंधि। (३) नाव। (४) हलके हलके।

यह जग कोठी काठ की, चहुँ दिसि लागी आगि।
भीतर रहा सो जरि मुआ, साधू उबरे भागि ॥९५॥
यहि बेरिया तो फिरि नहीं, मन में देखु बिचार।
आया लाभ के कारने, जनम जुवा मत हार ॥९६॥
बैल गढ़ंता नर गढ़ा, चूका सींग अरु पोँछ[1]।
एकहि गुरु के नाम बिनु, धिक दाढ़ी धिक मोँछ ॥९७॥
यह मन फूला बिषय बन, तहाँ न लाओ चीत।
सागर क्योँ ना उड़ि चलो, सुनो बैन मन मीत॥९८॥
कहै कबीर पुकारि के, चेतै नाहीं कोय।
अब की बेरिया चेतिहै, सो साहिब का होय ॥९९॥
मनुष जनम नर पाइ कै, चूकै अब की घात।
जाय परै भव चक्र में, सहै घनेरी लात ॥१००॥
लोग भरोसे कौन के, बैठि रहे अरगाय[2]।
ऐसे जियारा जम लुटै, भेँड़हिँ लुटै कसाय[3] ॥१०१॥
ऐसी गति संसार की, ज्योँ गाड़र की ठाट[4]।
एक पड़ा जेहि गाड़[5] में, सबै जायँ तेहि बाट ॥१०२॥
भ्रम का बाँधा ये जगत, यहि बिधि आवै जाय।
मानुष जनमहिँ पाइ नर, काहे का जहड़ाय[6] ॥१०३॥
धोखे धोखे जुग गया, जनमहिँ गया सिराय[7]।
थिति[8] नहिँ पकड़ो आपनी, यह दुख कहाँ समाय ॥१०४॥
केतो कहौँ बुझाइ कै, पर हथ जीव बिकाय।
मैं खैंचैाँ सतलोक को, सीधा जमपुर जाय ॥१०५॥

---

(१) बैल का जन्म होना चाहिये था पर बिधना सींग और पोँछ लगाना भूल गया जिस से मनुष्य की सूरत बन गई फिर जो भगवंत भजन न किया तो ऐसी दाढ़ी और मोछ को धिक्कार है। (२) अलग होके, बेपरवाह होके। (३) जैसे बकरे को कसाई मारता है ऐसे ही निर्दईपन से जम तुम्हारा वध करैगा। (४) भेँड़ का झुंड। (५) गड्ढा। (६) ठगाय। (७) बीत। (८) स्थिरता।

तू मत जाने बावरे, मेरा है सब कोय।
पिंड प्रान से बँधि रहा, सो अपना नहिँ होय ॥१०६॥
ऐसा संगी कोइ नहीँ, जैसा जीव रु देँह।
चलती बेरियाँ रे नरा, डारि चला ज्योँ खेह ॥१०७॥
एक सीस का मानवा, करता बहुतक हीस[१]।
लंकापति रावन गया, बीस भुजा दस सीस ॥१०८॥
जात सबन कहँ देखिया, कहहिँ कबीर पुकार।
चेता[२] होहु तो चेति ल्यो, दिवस परत है धार[३] ॥१०९॥
कहै कबीर पुकारि के, ये कलऊ बेवहार।
एक नाम जाने बिना, बूड़ि मुआ संसार ॥११०॥
मूए हो मरि जाहुगे, मुए की बाजी ढोल।
सुपन सनेही जग भया, सहिदानी रहिगो बोल ॥१११॥
नाम मछंदर ना बचे, गोरखदत्त रु ब्यास।
कहै कबीर पुकारि के, परे काल की फाँस ॥११२॥
झूठ झूठ कँह डारहू, मिथ्या यह संसार।
तेहिँ कारन मैं कहत हैाँ, जा तेँ होइ उबार ॥११३॥
झूठा सब संसार है, कोऊ न अपना मीत।
सत्त नाम को जानि ले, चलै सो भैाजल जीत ॥११४॥
बहुते तन को साजिया, जनमो भरि दुख पाय।
चेतत नाहीं बावरे, मोर मोर गुहराय ॥११५॥
खाते पीते जुग गया, अजहुँ न चेतो आय।
कहै कबीर पुकारि कै, जीव अचेते जाय ॥११६॥
परदे परदे चलि गया, समुझि परी नहिँ बानि।
जो जानै सो बाचिहै, होत सकल का हानि ॥११७॥

---

(१) हिर्स। (२) समझदार। (३) धाड़ = डाका।

पाँच तत्त का पूतरा, मानुष धरिया नाम।
एक तत्त के बीछुरे, बिकल भया सब ठाम ॥११८॥

इक दिन ऐसा होयगा, कोउ काहू का नाहिँ।
घर की नारी[1] को कहै, तन की नारी[2] जाहिँ ॥११९॥

भँवर बिलंबे[3] बाग में, बहु फूलन की आस।
जीव बिलंबे बाग में, अंतहुँ चले निरास ॥१२०॥

काल खड़ा सिर ऊपरे, जागु बिराने मिंत[4]।
जा का घर है गैल में, क्योँ सोवै निःचिंत ॥१२१॥

काया काठी काल घुन, जतन जतन घुनि खाय।
काया माहीं काल है, मर्म न कोऊ पाय ॥१२२॥

चलती चक्की देखि कै, दिया कबीरा रोय।
दुइ पट[5] भीतर आइकै, साबित गया न कोय ॥१२३॥

काल चक्र चक्की चलै, सदा दिवस अरु रात।
सगुन अगुन दुइ पाटला, ता में जीव पिसात ॥१२४॥

आसै पासै जो फिरै, निपट पिसावै सोय।
कीला से लागा रहै, ता को बिघन न होय[6] ॥१२५॥

चक्की चली गुपाल की, सब जग पीसा झारि।
रूढ़ा[7] सबद कबीर का, डारा पाट उखारि ॥१२६॥

साहू से भा चोरवा, चोरन से भयो जुज्झ।
तब जानैगो जीयरा, मार पड़ैगी तुज्झ ॥१२७॥

सेमर सुवना सेइया, दुइ ढैंढ़ी की आस।
ढैंढ़ी फूटि चटाक दे, सुवना चला निरास ॥१२८॥

---

(१) स्त्री। (२) नाड़ी। (३) आशक हुए। (४) मित्र। (५) चक्की के दो पल्ले। (६) मुँह से सभी कहते हैं कि काल की चक्की चल रही है पर सच्चे मन से कोई नहीं मानता नहीं तो कीला जिसकी सत्ता से वह घूमती है अर्थात् भगवंत को ऐसा दृढ़ कर पकड़ै कि आवागवन से रहित हो जाय। (७) बलवान।

मूए हौ मरि जाहुगे, बिन सर थोथे भाल।
परेहु कराइल[1] बृच्छ तर, आजु मरहु की काल्ह ॥१२९॥
नाम न जानै गाँव का, भूला मारग जाय।
काल्ह गड़ैया काँटवा, अगमन[2] कस न कराय ॥१३०॥
आज काल्ह दिन एक में, इस्थिर नाहिं सरीर।
कह कबीर कस राखिहौ, काँचे बासन नीर ॥१३१॥
सुनहु संत सतगुरु बचन, मत लीजै सिर भार।
हौं हजूर ठाढ़ो कहत, अब तैं सम्हारि सम्हार ॥१३२॥
पूरब ऊगै पच्छिम अथवै[3], भखै पवन का फूल।
राहु गरासै ताहु को, मानुष काहें भूल ॥१३३॥
जीव मर्म जानै नहीं, अंध भया सब जाय।
बादी[4] द्वारे दाद[5] नाहिं, जनम जनम पछिताय ॥१३४॥
नाम भजो तो अब भजो, बहुरि भजोगे कब्ब।
हरियर हरियर रूखड़े, ईंधन होइ गये सब्ब ॥१३५॥
टक्क टक्क गया जोवता, पल पल गया बिहाय।
जीव जंजाले परि रहा, जमहिं दमाम बजाय[6] ॥१३६॥
मैं इकला ये दुइ जना[7], साथी नाहीं काय[8]।
जो जम आगे ऊबरौं, (तौ) जरा पहूँचै आय ॥१३७॥
जरा कुत्ती जोबन ससा, काल अहेरी लार।
अबकी छिन में पकरिहै, गरबै कहा गँवार[9] ॥१३८॥

---

(१) करील या टेंटी की झाड़ जो काँटेदार होती है और पत्ती नहीं होती। (२) आगे से चेतना। (३) डूबै (सूरज)। (४) मुद्दई यानी काल। (५) न्याव। (६) आसरा ताकते २ समय बीत गया, जीव जंजाल में फँस रहा और उधर से जमराज ने नगाड़ा कूच का बजा दिया। (७) जरा (अर्थात जरजर अवस्था बुढ़ापे की) और मरन। (८) कोई। (९) जवान रूपी खरगोस के पीछे बुढ़ाई रूपी कुतिया उसके तोड़ डालने को लगी है और साथ ही उसके। काल शिकारी है सो तेरे इस मानुष जन्म को भी छिन में नष्ट कर देगा त किस घमंड में भूला है।

काल हमारे सँग रहै, कस जीवन की आस।
दिन दस नाम सम्हारि ले, जब लगि पिंजर साँस ॥१३९॥

आठ पहर योँही गया, माया मोह जँजाल।
सत्तनाम हिरदे नहीँ, जीति लिया जम काल ॥१४०॥

कबीर पाँच पखेरुआ, राखे पोष[1] लगाय।
एक जो आयो पारधी[2], ले गयो सबै उड़ाय ॥१४१॥

मंदिर माहीँ झलकती, दीवा की सी जोति।
हंस बटाऊ[3] चलि गया, काढ़ो घर की छोति[4] ॥१४२॥

बारी बारी आपने, चले पियारे मित्त।
तेरी बारी जीयरा, नियरे आवै नित्त ॥१४३॥

माली आवत देखि कै, कलियाँ करैँ पुकारि।
फूली फूली चुनि लिये, कालिह हमारी बारि[5] ॥१४४॥

परदे रहती पदमिनी, करती कुल की कानि।
छड़ी जो पहुँची काल की, ढेर भई मैदान ॥१४५॥

मछरी दह[6] छोड़ो नहीँ, धीमर[7] तेरो काल।
जेहिँ जेहिँ डाबर[8] घर करो, तह तहँ मेलै जाल ॥१४६॥

पानी मेँ की माछरी, क्योँ तैँ पकरयो तीर।
कड़िया खटकी जाल की, आइ पहूँचा कीर[9] ॥१४७॥

हे मतिहीनी माछरी, राख न सकी सरीर।
सो सरवर सेआ नहीँ, (जहँ) जाल काल नहिँ कीर ॥१४८॥

---

(१) पालन पोषन। (२) शिकारी। (३) बटोही। (४) प्राण के निकलते ही घर की छूत निकालने को उसे धोते हैँ। (५) पारी। (६) कुंड, गहरा पानी। (७) कहार या मल्लाह जो मछली पकड़ता है। (८) पानी का गढ़ा। (९) कीर नाम किरात अर्थात् भिल्ल जाति का है जो शिकार करके खाते हैँ। हे मछली जिसका तालाब के बीच मेँ स्थान था तू क्योँ किनारे आई जिससे जाल मे फँस गई।

हे मतिहीनी माछरी, घोमर मीत कियाय।
करि समुद्र से रूसना, छीलर[1] चित्त दियाय ॥१४९॥
काँचो काया मन अथिर, थिर थिर काज करंत।
ज्योँ ज्योँ नर निधड़क फिरत, त्योँ त्योँ काल हसंत ॥१५०॥
टाला टूली दिन गया, ब्याज बढ़ंता जाय।
ना गुरु भज्यो न खत कट्यो[2], काल पहूँचा आय ॥१५१॥
कबीर पैंड़ा[3] दूर है, बीचि पड़ी है रात।
ना जानौँ क्या होयगा, ऊगे तेँ परभात[4] ॥१५२॥
हम जानैँ थे खायँगे, बहुत जमीँ बहु माल।
ज्योँ का त्योँ ही रहि गया, पकरि लै गया काल ॥१५३॥
चहुँ दिसि पक्का कोट था, मंदिर नगर मँझार।
खिड़की खिड़की पाहरू, गज बंधा दरबार ॥१५४॥
चहुँ दिसि सूरा बहु खड़े, हाथ लिये हथियार।
रहि गये सबही देखते, काल ले गया मार ॥१५५॥
संसय काल सरीर में, विषम[5] काल है दूर।
जा को कोई ना लखै, जारि करै सब धूर ॥१५६॥
दव[6] की दाही लाकड़ी, ठाढ़ी करै पुकार।
अब जो जाउँ लुहार घर, डाहै दूजी बार ॥१५७॥
मेरा बीर[7] लुहारिया, तू मत जारै मोहिँ।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं जारौंगी तोहिँ ॥१५८॥
जरनेहारा भी मुआ, मुआ जरावनहार।
हैहै करते भी मुए, का से करौँ पुकार ॥१५९॥
माई बीर बटाउआ, भरि भरि नैनन रोय।
जा का था सो ले लिया, दीन्हा था दिन दोय ॥१६०॥

---

(१) छिछला पानी। (२) कर्म की रेखा नहीँ कटी या लेखा नहीँ चुका। (३) रास्ता। (४) सवेरा। (५) कठिन। (६) अगिन। (७) भाई।

निःचय काल गरासही, बहुत कहा समुझाय।
कह कबीर मैं का कहौं, देखत ना पतियाय ॥१६१॥
मरती बिरिया पुन[1] करै, जीवत बहुत कठोर।
कह कबीर क्यों पाइये, काढ़े खाँडे चोर[2] ॥१६२॥
कबीर बैद बुलाइया, पकड़ि दिखाई बाहिँ।
बैद न बेदन[3] जानही, कफ्फ करेजे माहिँ ॥१६३॥
कबीर यह तन बन भया, कर्म जो भया कुहारि[4]।
आप आप को काटिहै, कहै कबीर बिचारि ॥१६४॥
कबीर सतगुरु सरन की, जो कोइ छाड़ै ओट।
घन अहरन बिच लोह ज्यौं, घनी सहै सिर चोट ॥१६५॥
महलन माहीं पौढ़ते, परिमल अंग लगाय।
ते सुपने दीसैं नहीं, देखत गये बिलाय ॥१६६॥
जंगल ढेरी राख की, उपरि उपरि हरियाय।
ते भी होते मानवा, करते रँग रलियाय ॥१६७॥
तेरा संगी कोइ नहीं, सबै स्वारथी लोय।
मन परतीति न ऊपजै, जिव बिस्वास न होय ॥१६८॥
जा को रहना उत्त घर, सो क्यों लोड़ै[5] इत्त।
जैसे पर घर पाहुना, रहै उठाये चित्त ॥१६९॥
ज्यौं कोरी रेजा बुनै, नियरा आवै छोर।
ऐसा लेखा मीच का, दौरि सकै तो दौर ॥१७०॥
कोठे ऊपर दौरना, सुख नींदरी न सोय।
पुन्ये पाया देहरा, ओछी ठौर न खोय ॥१७१॥
मैं मैं मेरी जनि करै, मेरी मूल बिनासि।
मेरी पग का पैकड़ा[6], मेरी गल की फाँसि ॥१७२॥

---

(१) पुन्य दान। (२) जब चोर तलवार निकाले खड़ा है उसको कैसे पकड़ सकोगे। (३) दुक्ख, दरद। (४) कुल्हाड़ी। (५) चाहै या चाह करै। (६) बेड़ी।

कबीर नाव है झाँझरी, कूरा[1] खेवनहार।
हलके हलके तिर गये, बूड़े जिन सिर भार ॥१७३॥

कबीर नाव तो झाँझरी. भरी बिराने भार।
खेवट से परिचय नहीं, क्योंकर उतरै पार ॥१७४॥

कायथ[2] कागद काढ़िया, लेखा वार न पार।
जब लगि स्वास सरीर मैं, तब लगि नाम सँभार ॥१७५॥

कबीर रसरी पाँव मैं, कहा सोवै सुख चैन।
स्वास नगाड़ा कूँच का, बाजत है दिन रैन ॥१७६॥

राज दुआरे बंधिया, मूड़ी धुनै गजंद[3]।
मनुष जनम कब पाइहैं, भजिहैं परमानंद ॥१७७॥

मनुष जनम दुर्लभ अहै, होय न बारंबार।
तरवर से पत्ता झरै, बहुरि न लागै डार ॥१७८॥

काल चिचावत[4] है खड़ा, जागु पियारे मिंत।
नाम सनेही जगि रहा, क्यों तू सोय निचिंत ॥१७९॥

जरा आय जोरा किया, पिय आपन पहिचान।
अंत कछू पल्ले परै, ऊठत है खरिहान ॥१८०॥

बिरिया बीती बल घटा, केस पलटि भये धौर[5]।
बिगरा काज सँवारि ले, फिरि छूटन नहिं ठौर ॥१८१॥

घड़ी जो बाजै राज दर, सुनता है सब कोय।
आयु घटै जोबन खिसै, कुसल कहाँ तें होय ॥१८२॥

कै कूसल अनजान के, अथवा नाम जपंत।
जनम मरन होवै नहीं, तो बूझो कुसलंत ॥१८३॥

पात झरंता यों कहै, सुनु तरवर बनराय।
अब के बिछुरे ना मिलैं, दूर परैंगे जाय ॥१८४॥

---

(१) कुटिल। (२) चित्रगुप्त। (३) हाथी। (४) चिल्लाता है। (५) सफ़ेद।

जो ऊगे सो अत्थवै[1], फूलै सो कुम्हिलाय ।
जो चुनिये सो ढहि परै, जामै[2] सो मरि जाय ॥१८५॥
निधड़क बैठा नाम बिनु, चेति न करै पुकार ।
यह तन जल का बुदबुदा, बिनसत नाहीं बार ॥१८६॥
तीन लोक पिंजरा भया, पाप पुन्न दोउ जाल ।
सकल जीव सावज[3] भयो, एक अहेरी काल ॥१८७॥
कबीर जंत्र न बाजई, टूटि गया सब तार ।
जंत्र बिचारा क्या करै, चला बजावनहार ॥१८८॥
यह जिव आया दूर तैं, जाना है बहु दूर ।
बिच के बासे[4] बसि गया, काल रहा सिर पूर ॥१८९॥
कबीर गाफिल क्या करै, आया काल नजीक ।
कान पकरि के लै चला, ज्यौं अजयाहिं खटीक[5] ॥१९०॥
बालपना भोले गयो, और जुवा महमंत ।
बृद्धपने आलस भयो, चला जरंते अंत ॥१९१॥
साथी हमरे चलि गये, हम भी चालनहार ।
कागद मैं बाकी रही, ता तैं लागी बार ॥१९२॥
घाट जगाती धरमराय, सब का झारा लेहि ।
सत्त नाम जाने बिना, उलटि नरक मैं देहि ॥१९३॥
जिन पै नाम निसान है, तिन्ह अटकावै कौन ।
पुरुष खजाना पाइया, मिटि गया आवागौन ॥१९४॥
खुलि खेलो संसार में, बाँधि न सक्कै कोय ।
घाट जगाती क्या करै, सिर पर पोट[6] न होय ॥१९५॥

---

(१) अस्त होय, डूबै। (२) जन्मै, उगै। (३) शिकार। (४) पड़ाव, टिकने की जगह। (५) जैसे बकरी को बधिक ले जाता है। (६) कर्म का बोझ।

उदारता का अंग।

कबीर गुरु के मिलन की, बात सुनी हम दोय।
कै साहिब को नाम लै, कै कर ऊँचा होय ॥१॥
बसंत ऋतु जाचक भया, हरषि दिया द्रुम[1] पात।
ता तें नव पल्लव[2] भया, दिया दूर नहिं जात ॥२॥
जो जल बाढ़ै नाव में, घर में बाढ़ै दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये, यहि सज्जन को काम ॥३॥
हाड़ बड़ा हरि भजन कर, द्रव्य बड़ा कछु देय।
अकल बड़ी उपकार कर, जीवन का फल येह ॥४॥
कहै कबीरा देय तू, जब लगि तेरी देह।
देह खेह होइ जायगी, तब कौन कहैगा देह ॥५॥
गाँठि होय सो हाथ कर, हाथ होय सो देह।
आगे हाट न बानिया, लेना होय सो लेह ॥६॥
देह धरे का गुन यही, देह देह कछु देह।
बहुरि न देही पाइये, अब की देह सो देह ॥७॥
दान दिये धन ना घटै, नदी न घट्टै नीर।
अपनी आँखों देखिये, यों कथि कहै कबीर ॥८॥
सतही में सत बाँटई, रोटी में तें टूक।
कहै कबीर ता दास को, कबहुँ न आवै चूक ॥९॥

सहन का अंग।

काँच कथीर अधीर नर, जतन करत है भंग।
साधू कंचन ताइये, चढ़ै सवाया रंग ॥१॥

(१) पेड़। (२) पत्तियाँ।

काँच कथीर अधीर नर, ताहि न उपजै प्रेम।
कह कबीर कसनी सहै, कै हीरा कै हेम[1] ॥२॥
कसत कसौटी जो टिकै, ता को सबद सुनाय।
सोई हमरा बंस है, कह कबीर समुझाय ॥३॥

बिस्वास का अंग।

कबीर क्या मैं चिंतहूँ, मम चिंतै क्या होय।
मेरी चिंता हरि करै, चिंता मोहिं न कोय ॥१॥
साधू गाँठि न बाँधई, उदर समाना लेय।
आगे पाछे हरि खड़े, जब माँगे तब देय ॥२॥
चिंता न कर अचिंत रहु, देनहार समरत्थ।
पसू पखेरू जीव जंत, तिनके गाँठि न हत्थ ॥३॥
अंडा पालै काछुई, बिन थन राखै पोख[2]।
यौं करता सब की करै, पालै तीनिउ लोक ॥४॥
पौ फाटी पगरा[3] भया, जागे जीवा जून।
सब काहू को देत है, चौंच समाना चून ॥५॥
सत्त नाम से मन मिला, जम से परा दुराय।
मोहिं भरोसा इष्ट का, बंदा नरक न जाय ॥६॥
कर्म करीमा लिखि रहा, अब कछु लिखा न होय।
मासा घटै न तिल बढ़ै, जो सिर फोड़ै कोय ॥७॥
साईं इतना दीजिये, जा मैं कुटुँब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु ना भूखा जाय ॥८॥
जा के मन बिस्वास है, सदा गुरू हैं संग।
कोटि काल झक झोलही, तऊ न है चित भंग ॥९॥

---

(१) सोना। (२) परवरिश। (३) सवेरा।

खोज पकरि बिस्वास गहु, धनी मिलैंगे आय।
अजया[1] गज मस्तक चढ़ी, निरभय कोंपल खाय ॥१०॥
पाँडर[2] पिंजर मन भँवर, अरथ अनूपम बास।
एक नाम सींचा अमी, फल लागा बिस्वास ॥११॥
पद गावै लौलीन ह्वै, कटै न संसय फाँस।
सबै पछोरै थोथरा, एक बिना बिस्वास ॥१२॥
गाया जिन पाया नहीं, अनगाये तें दूर।
जिन गाया बिस्वास गहि, ता के सदा हजूर ॥१३॥
गावनही में रोवना, रोवनही में राग।
एक बनहिं में घर करै, एक घरहिं बैराग ॥१४॥
जो सच्चा बिस्वास है, तो दुख क्यों ना जाय।
कहै कबीर बिचारि के, तन मन देहि जराय ॥१५॥
बिस्वासी ह्वै गुरु भजै, लोहा कंचन होय।
नाम भजै अनुराग तें, हरष सोक नहिं दोय ॥१६॥

दुबिधा का अंग।

दुबिधा जाके मन बसै, दयावंत जिउ नाहिं।
कबीर त्यागो ताहि को, भूलि देउ जनि बाहिं ॥१॥
हिरदे माहीं आरसी, मुख देखा नहिं जाय।
मुख तौ तबही देखई, दुबिधा देहि बहाय ॥२॥
पढ़ा गुना सीखा सभी, मिटी न संसय सूल।
कह कबीर का से कहूँ, यह सब दुख का मूल ॥३॥

---

(१) बकरी। (२) चमेली के पेड़ की एक जाति।

चींटी चावल लै चली, बिच मैं मिलि गइ दार[1]।
कह कबीर दोउ ना मिलै, इक लै दूजी डार ॥४॥
आगा पीछा दिल करै, सहजै मिलै न आय।
सो बासी जम लोक का, बाँधा जमपुर जाय ॥५॥
सत्त नाम कड़ुवा लगै, मीठा लागै दाम।
दुबिधा में दोऊ गये, माया मिली न राम ॥६॥
तकत तकावत्त रहि गया, सका न बेझी[2] मारि।
सबै तीर खाली परा, चला कमाना डारि ॥७॥
नगर चैन तब जानिये, (जब) एकै राजा होय।
याहि दुराजी[3] राज में, सुखी न देखा कोय ॥८॥
संसा खाया सकल जग, संसा किनहुँ न खद्ध।
जो बेधा गुरु अच्छरा, तिन संसा चुनि चुनि खद्ध ॥९॥

मध्य का अंग।

पाया कहैं ते बावरे, खोया कहैं ते कूर।
पाया खोया कछु नहीं, ज्यौं का त्यौं भरपूर ॥१॥
भजूँ तो को है भजन को, तजूँ तो को है आन।
भजन तजन के मध्य में, सो कबीर मन मान ॥२॥
लेउँ तो महा पतिग्रह, देऊँ तो भोगंत।
लेन देन के मध्य में, सो कबीर निज संत ॥३॥
हिंदू कहूँ तो मैं नहीं, मुसल्मान भी नाहिँ।
पाँच तत्व का पूतला, गैबी खेलै माहिँ ॥४॥

---

(१) दाल। (२) निशाना। (३) माया और ब्रह्म।

गैबी आया गैब तैं, इहाँ लगाया ऐब।
उलटि समाना गैब मैं, तब कहँ रहिया ऐब ॥५॥

अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप।
अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप ॥६॥

सहज का अंग।

सहज सहज सब कोउ कहै, सहज न चीन्है कोय।
जा सहजै साहिब मिलै, सहज कहावै सोय ॥१॥

सहज सहज सब कोइ कहै, सहज न चीन्है कोय।
जा सहजै विषया तजै, सहज कहावै सोय ॥२॥

सहजै सहजै सब भया, मन इंद्री का नास।
निःकामी से मन मिला, कटी करम की फाँसि ॥३॥

सहजै सहजै सब गया, सुत वित काम निकाम।
एकमेक ह्वै मिलि रहा, दास कबीरा नाम ॥४॥

जो कछु आवै सहज मैं, सोई मीठा जान।
कडुआ लागै नीम सा, जा मैं ऐंचा तान ॥५॥

सहज मिलै सो दूध सम, माँगा मिलै सो पानि।
कहै कबीर वह रक्त सम, जा मैं ऐंचा तान ॥६॥

काहे को कलपत फिरै, दुखी होत बेकार।
सहजै सहजै होयगा, जो रचिया करतार ॥७॥

जो कलपै तो दूर है, अनकलपे ह्वै सोय।
सतगुरु मेटी कलपना, सहजै होय सो होय ॥८॥

अनुभव ज्ञान का अंग।

आतम अनुभव ज्ञान की, जो कोइ पूछै बात।
सो गूँगा गुड़ खाइ कै, कहै कौन मुख स्वाद ॥१॥
ज्यौं गूँगे के सैन को, गूँगा ही पहिचान।
त्यौं ज्ञानी के सुक्ख को, ज्ञानी होय सो जान ॥२॥
नर नारी के स्वाद को, खसी[1] नहीं पहिचान।
तत[2] ज्ञानी के सुक्ख को, अज्ञानी नहिं जान ॥३॥
आतम अनुभव सुक्ख का, का कोइ बूझै बात।
कै जो कोई जानई, कै अपनो ही गात ॥४॥
आतम अनुभव जब भयो, तब नहिं हर्ष बिषाद।
चित्त दीप सम ह्वै रह्यो, तजि करि बाद बिबाद ॥५॥
कागद लिखै सो कागदी, की ब्योहारी जीव।
आतम दृष्टि कहाँ लिखै, जित देखै तित पीव ॥६॥
लिखा लिखी की है नहीं, देखा देखि की बात।
दुलहा दुलहिन मिलि गये, फीकी परी बरात ॥७॥
भरो होय सो रीतई, रीतो[3] होय भराय।
रीतो भरो न पाइये, अनुभव सोई कहाय ॥८॥

बाचक ज्ञान का अंग

ज्यौं अँधरे को हाथिया, सब काहू को ज्ञान।
अपनी अपनी कहत हैं, का को धरिये ध्यान ॥१॥
अँधरन को हाथी सही, हैं साचे सगरे।
हाथन की टोई कहैं, आँखिन के अँधरे ॥२॥

---

(१) हिजड़ा (२) तत्व। (३) खाली।

ज्ञानी से कहिये कहा, कहत कबीर लजाय।
अंधे आगे नाचते, कला अकारथ जाय ॥३॥
ज्ञानी तो निर्भय भया, मानै नाहीं संक।
इन्द्रिन के रे बसि परा, भुगतै नर्क निसंक ॥४॥
ज्ञानी मूल गँवाइया, आप भये करता।
ता तैं संसारी भला, जो सदा रहै डरता ॥५॥
ज्ञानी भूले ज्ञान कथि, निकट रह्यो निज रूप।
बाहर खोजैं बापुरे, भीतर वस्तु अनूप ॥६॥
भीतर तो भेद्यो नहीं, बाहर कथैं अनेक।
जो पै भीतर लखि परै, भीतर बाहर एक ॥७॥
समझ सरीखी बात है, कहन सरीखी नाहिँ।
जेते ज्ञानी देखिये, तेते संसय माहिँ ॥८॥

करनी और कथनी का अंग।

कथनी मीठी खाँड़ सी, करनी बिप की लोय।
कथनी तजि करनी करै, तो बिप से अमृत होय ॥१॥
करनी गर्व-निवारनी, मुक्ति स्वारथी सोय।
कथनी तजि करनी करै, तौ मुक्ताहल होय ॥२॥
कथनी के सूरे घने, थोथे बाँधे तीर।
बिरह बान जिन के लगा, तिन के बिकल सरीर ॥३॥
कथनी बदनी छाड़ि के, करनी से चित लाय।
नरहिँ नीर प्याये बिना, कबहूँ प्यास न जाय ॥४॥
करनी बिन कथनी कथै, अज्ञानी दिन रात।
.र ज्यौं भूँसत फिरै, सुनी सुनाई बात ॥५॥

करनी बिन कथनी कथै, गुरुपद लहै न सोय।
बातों के पकवान से, धापा नाहीं कोय ॥६॥
लाया साखि बनाय कर, इत उत अच्छर काट।
कहै कबीर कब लग जिये, जूठी पत्तल चाट ॥७॥
पढ़ि औरन समझावई, मन नहिं बाँधै धीर।
रोटी का संसय पड़ा, यों कहि दास कबीर ॥८॥
पानी मिलै न आप को, औरन बकसत छीर।
आपन मन निस्चल नहीं, और बँधावत धीर ॥९॥
करनी करै सो पुत्र हमारा, कथनी कथै सो नाती।
रहनी रहै सो गुरू हमारा, हम रहनी के साथी ॥१०॥
कथनी करि फूला फिरै, मेरे हृदय उचार।
भाव भक्ति समझै नहीं, अंधा मूढ़ गँवार ॥११॥
कथनी थोथी जगत में, करनी उत्तम सार।
कह कबीर करनी सबल, उतरै भौजल पार ॥१२॥
पद जोरै साखी कहै, साधन परि गइ रोस।
काढ़ा जल पीवै नहीं, काढ़ि पियन की हौंस ॥१३॥
करनी को रज[1] मानही, कथनी मेरु[2] समान।
कथता बकता मरि गया, मूरख मूढ़ अजान ॥१४॥
जैसो मुख तें नीकसै, तैसी चालै नाहिं।
मनुष नहीं वे स्वान गति, बाँधे जमपुर जाहिं ॥१५॥
जैसो मुख तें नीकसै, तैसी चालै चाल।
तेहि सतगुरु नियरे रहै, पल में करै निहाल ॥१६॥
कबीर करनी क्या करै, जो गुरु नाहिं सहाय।
जेहि जेहि डारी पग धरै, सो सो निव निव जाय ॥१७॥

---

(१) धूल, गर्द। (२) पहाड़।

करनी करनी सब कहै, करनी माहिँ विवेक।
वह करनी बहि जान दे, जो नहिँ परखै एक ॥१८॥
कथनी कथा तो क्या हुआ, करनी ना ठहराय।
कलावंत[1] का कोट ज्यौं, देखत ही ढहि जाय ॥१९॥
कथनी काँची हो गई, करनी करी न सार।
स्रोता बकता मरि गये, मूरख अनँत अपार ॥२०॥
कूकस[2] कूटै कनि[3] बिना, बिन करनी का ज्ञान।
ज्यौं बंदूक गोली बिना, भड़कि न मारै आन ॥२१॥
कथनी को धीजूँ[4] नहीं, करनी मेरा जीव।
कथनी करनी दोउ थकी, (तब) महल पधारे पीव ॥२२॥
कथते हैँ करते नहीं, मुख के बड़े लबार।
मुँहड़ा काला होयगा, साहिब के दरबार ॥२३॥
कथते हैँ करते सही, साच सरोतर सोय।
साहिब के दरबार मेँ, आठ पहर सुख होय ॥२४॥
कबीर करनी आपनी, कबहु न निस्फल जाय।
सात समुँद आड़ा पड़ै, मिलै अगाऊ आय ॥२५॥
जो करनी अन्तर बसै, निकसै मुख की बाट।
बोलत ही पहिचानिये, चोर साहु को घाट ॥२६॥
चोर चुराई तूँबड़ा, गाड़े पानी माहिँ।
वह गाड़े तेँ ऊछलै, (यौं) करनी छानी[5] नाहिँ ॥२७॥
कथनी को तो भानि कै, करनी देइ बहाय।
दास कबीरा यौं कहै, ऐसा होय तो आय ॥२८॥
साखी कहै गहै नहीं, चाल चली नहिँ जाय।
सलिल मोह नदिया बहै, पाँव नहीं ठहराय ॥२९॥

---

(१) बाज़ीगर। (२) भूसी। (३) ग़ल्ला, माँगी। (४) चाहूँ। (५) छिपी, ढकी।

जैसी करनी जीसु की, तैसो भुगतै सोय ।
बिन सतगुर की भक्ति के, जन्म जन्म दुख होय ॥३०॥
मारग चलते जो गिरै, ता को नाहीं दोस ।
कह कबीर बैठा रहै, ता सिर करड़े कोस ॥३१॥

सार गहनी का अंग ।

साधू ऐसा चाहिये, जैसा सूप सुभाय ।
सार सार को गहि रहै, थोथा देइ उड़ाय ॥१॥
पहिले फटके छाँटि कै, थोथा सब उड़ि जाय ।
उत्तम भाँड़े पाइया, जो फटके ठहराय ॥२॥
सतसंगति है सूप ज्यौं, त्यागै फटकि असार ।
कह कबीर गुरु नाम लै, परसै नाहिं बिकार ॥३॥
औगुन को तो ना गहै, गुनहीं को लै बीन ।
घटघट महकै[1] मधुप[2] ज्यौं, परमातम लै चीन्ह ॥४॥
हंसा पय को काढ़ि लै, छीर नीर निरवार ।
ऐसे गहै जो सार को, सो जन उतरै पार ॥५॥
छीर रूप सतनाम है, नीर रूप व्यवहार ।
हंस रूप कोइ साध है, तत का छाननहार ॥६॥
पारा कंचन काढ़ि लै, जो रे मिलावै आन ।
कहै कबीरा सार मत, परगट किया बखान ॥७॥
रक्त छाड़ि पय को गहै, जो रे गऊ का बच्छ ।
औगुन छाड़ै गुन गहै, सार-गराही[3] लच्छ ॥८॥

---

(१) सूँघै । (२) भँवरा (३) सार-ग्राही ।

असार गहनी का अङ्ग

कबीर कीट सुगंधि तजि, नरक गहै दिन रात।
असार-ग्राही मानवा, गहै असारहि बात ॥१॥
मच्छी मल को गहत है, निर्मल वस्तुहिं छाड़ि।
कहै कबीर असार मति, माँड़ि रहा मन माँड़ि ॥२॥
आटा तजि भूसी गहै, चलनी देखु निहारि।
कबीर सारहि छाड़ि कै, करै असार अहार ॥३॥
पापी पुन्न न भावई, पापहिं बहुल सुहाय।
माखि सुगंधी परिहरै, जहँ दुर्गंध तहँ जाय ॥४॥
रसहिं छाड़ि छोही गहै, कोल्हू परतछ देख।
गहै असारहिं सार तजि, हिरदे नाहिं बिवेक ॥५॥
दूध त्यागि रक्तै गहै, लगी पयोधर[1] जोंक।
कहै कबीर असार मति, लच्छन राखै कोक[2] ॥६॥
निर्मल छाड़ै मल गहै, जनम असारै खोय।
कहै कबीरा सार तजि, आपुन गये बिगोय ॥७॥
बूटी बाटी पान करि, कहै दुःख जो जाय।
कह कबीर सुख ना लहै, यही असार सुभाय ॥८॥

पारख का अंग।

जब गुनको गाहक मिलै, तब गुन लाख बिकाय।
जब गुन को गाहक नहीं, तब कौड़ी बदले जाय ॥१॥
हरि हीरा जन जौहरी, लै लै माँडी हाट।
जब रे मिलैगा पारखी, तब हीरा का साट ॥२॥

---

(१) थन। (२) सरहंस जिसका अहार मछली है।

कबीर देखि के परखि ले, परखि के मुखाँ बुलाय।
जैसी अंतर होयगी, मुख निकसैगी ताय ॥३॥
हीरा तहाँ न खोलिये, जहँ खोटी है हाट।
कसि करि बाँधौ गाठरी, उठि करि चालो बाट ॥४॥
एकहि बार परखिये, ना वा बारम्बार।
बालू तौहू किरकिरी, जो छानै सौ बार ॥५॥
पिउ मोतियन की माल है, पोई काँचे धाग।
जतन करो झटका घना, नहिं टूटै कहुँ लागि ॥६॥
हीरा परखै जौहरी, सब्दहिं परखै साध।
कबीर परखै साध को, ता का मता अगाध ॥७॥
हीरा पाया परखि कै, घन में दीया आनि।
चोट सही फूटा नहीं, तब पाई पहिचान ॥८॥
जो हंसा मोती चुगै, काँकर क्यों पतियाय।
काँकर माथा ना नवै, मोती मिलै तो खाय ॥९॥
हंसा देस सुदेस का, परे कुदेसा आय।
जा का चारा मोतिया, घोंघे क्यों पतियाय ॥१०॥
हंसा बगुला एकसा, मानसरोवर माहिं।
बगा ढँढोरै माछरी, हंसा मोती खाहिं ॥११॥
गावनिया के मुख बसौं, स्रोता के मैं कान।
ज्ञानी के हिरदे बसौं, भेदी का निज प्रान ॥१२॥
कीर्तनिया से कोस बिस, सन्यासी से तीस।
गिरही के हिरदे बसौं, बैरागी के सीस ॥१३॥

अपारख का अंग।

चंदन गया विदेसड़े, सब कोइ कहै पलास।
ज्यों ज्यों चूल्हे झोंकिया, त्यों त्यों अधकी बास ॥१॥

एक अचंभा देखिया, हीरा हाट बिकाय।
परखनहारा बाहिरी, कौड़ी बदले जाय ॥२॥
हीरा साहिब नाम है, हिरदे भीतर देख।
बाहर भीतर भरि रहा, ऐसा आप अलेख ॥३॥
बाद बके दम जात है, सुरति निरति लै बोल।
नित प्रति हीरा सबद का, गाहक आगे खोल ॥४॥
नाम रतन धन पाइ कै, गाँठि बाँध ना खोल।
नाहिँ पटन[1] नहिँ पारखी, नहिँ गाहक नहिँ मोल ॥५॥
जहँ गाहक तहँ मैं नहीं, मैं तहँ गाहक नाहिँ।
परिचय बिन फूला फिरै, पकर सबद की बाहिँ ॥६॥
कबीर खाँड़हिँ छाड़ि कै, काँकर चुनि चुनि खाय।
रतन गँवाया रेत में, फिर पाछे पछिताय ॥७॥
कबीर ये जग आँधरा, जैसी अंधी गाय।
बछरा था सो मरि गया, ऊभी[2] चाम चटाय ॥८॥

(१) बाज़ार। (२) खड़ी।

कबीर साहिब का साखी-संग्रह

[भाग २]

नाम का अंग

आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भया, छूटा बंधन मोह ॥१॥
आदि नाम बीरा[1] अहै, जीव सकल ल्यौ बूझि।
अमरावै सतलोक लै, जम नहिं पावै सूझि ॥२॥
आदि नाम निज सार है, बूझि लेहु सो हंस।
जिन जान्यो निज नाम को, अमर भयो सो बंस ॥३॥
आदि नाम निज मूल है, और मंत्र सब डार[2]।
कह कबीर निज नाम बिनु, बूड़ि मुआ संसार ॥४॥
कोटि नाम संसार में, ता तें मुक्ति न होय।
आदि नाम जो गुप्त जप, बूझै बिरला कोय ॥५॥
राम राम सब कोइ कहै, नाम न चीन्है कोय।
नाम चीन्हि सतगुरु मिलै, नाम कहावै सोय ॥६॥
ओंकार निस्चय भया, सो करता मत जान।
साचा सब्द कबीर का, परदे में पहिचान ॥७॥
जो जन होइहै जौहरी, रतन लेहि बिलगाय।
सोहं सोहं जपि मुआ, मिथ्या जनम गँवाय ॥८॥

---

(१) पान परवाना ; हुक्मनामा। (२) शाखा।

नाम रतन धन मुज्झ में, खान खुली घट माहिँ ।
सैंतमैंत ही देत हौं, गाहक कोई नाहिँ ॥९॥
सभी रसायन हम करी, नाहिँ नाम सम कोय ।
रंचक घट मैं संचरै, सब तन कंचन होय ॥१०॥
जबहिँ नाम हिरदे धरा, भया पाप का नास ।
मानो चिनगी आग की, परी पुरानो घास ॥११॥
कोइ न जम से बाचिया, नाम बिना धरि खाय ।
जे जन बिरही नाम के, ता को देखि डेराय ॥१२॥
पूँजी मेरी नाम है, जा तैं सदा निहाल ।
कबीर गरजै पुरुष बल, चोरी करै न काल ॥१३॥
कबीर हमरे नाम बल, सात दीप नौखंड ।
जम डरपै सब भय करैं, गाजि रहा ब्रह्मंड ॥१४॥
नाम रतन सोइ पाइहै, ज्ञान दृष्टि जेहिँ होय ।
ज्ञान बिना नहिँ पावई, कोटि करै जो कोय ॥१५॥
ज्ञान दीप परकास करि, भीतर भवन जराय ।
तहाँ सुमिर सतनाम को, सहज समाधि लगाय ॥१६॥
एक नाम को जानि कै, मेटु करम का अंक ।
तबहीं सो सुचि[1] पाइहै, जब जिव होय निसंक ॥१७॥
एक नाम को जानि करि, दूजा देइ बहाइ ।
तीरथ ब्रत जप तप नहीं, सतगुरु चरन समाय ॥१८॥
जैसे फनपति[2] मंत्र सुनि, राखै फनहिँ सिकोरि ।
तैसे बौरा नाम तैं, काल रहै मुख मोरि ॥१९॥
सब को नाम सुनावहूँ, जो आवेगा पास ।
सबद हमारो सत्य है, दृढ़ राखो बिस्वास ॥२०॥

(१) पवित्र । (२) साँप ।

होय बिबेकी सबद का, जाय मिलै परिवार।
नाम गहै सो पहुँचई, मानहु कहा हमार ॥२१॥
सुरति समावै नाम में, जग से रहै उदास।
कह कबीर गुरु चरन में, दृढ़ राखो बिस्वास ॥२२॥
अस अवसर नहिं पाइहो, धरो नाम कढ़िहार[1]।
भवसागर तरि जाव तब, पलक न लागै बार ॥२३॥
आसा तो इक नाम की, दूजी आस निरास।
पानी माहीं घर करै, तौहू मरै पियास ॥२४॥
आसा तो इक नाम की, दूजी आस निवार।
दूजी आसा मारसी, ज्यों चौपर की सार[2] ॥२५॥
नाम जो रत्ती एक है, पाप जो रती हजार।
आध रती घट संचरै, जारि करै सब छार ॥२६॥
कोटि करमकटिपलक में, जो रंचक आवै नाँव।
जुग अनेक जो पुन्न करि, नहीं नाम बिनु ठाँव ॥२७॥
कबीर सतगुरु नाम में, सुरति रहै सरसार[3]।
तो मुख तें मोती झरै, हीरा अनँत अपार ॥२८॥
सत्तनाम निज औषधी, सतगुरु दई बताय।
औषधि खाय रु पथ[4] रहै, ता की बेदन जाय ॥२९॥
कबीर सतगुरु नाम में, बात चलावै और।
तिस अपराधी जीव को, तीन लोक कित ठौर ॥३०॥
सुपनहु में बर्राइ के, धोखेहु निकरै नाम।
वा के पग की पैंतरी[5], मेरे तन को चाम ॥३१॥
कबीर सब जग निर्धना, धनवंता नहिं कोय।
धनवंता सोइ जानिये, सत्तनाम धन होय ॥३२॥

---

(१) निकालने वाला। (२) गोट। (३) मस्त। (४) पहरेज़ी खाना। (५) जूती।

जा की गाँठी नाम है, ता के है सब सिद्धि।
कर जोरे ठाढ़ी सबै, अष्ट सिद्धि नव निद्धि॥३३॥
हय गय औरो सघन घन, छत्र धुजा फहराय।
ता सुख तें भिच्छा भली, नाम भजन दिन जाय॥३४॥
नाम जपत कुष्ठी भला, चुइ चुइ परै जो चाम।
कंचन देंह केहि काम की, जा मुख नाहीं नाम॥३५॥
नाम लिया जिन सब लिया, सकल वेद का भेद।
बिना नाम नरकै परा, पढ़ता चारो वेद॥३६॥
पारस रूपी नाम है, लोहा रूपी जीव।
जब जा पारस भेंटिहै, तब जिव होसी सीव॥३७॥
पारस रूपी नाम है, लोह रूप संसार।
पारस पाया पुरुष का, परखि परखि टकसार॥३८॥
सुख के माथे सिलि परै, (जो) नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुक्ख की, पल पल नाम रटाय॥३९॥
कबीर सतगुरु नाम से, कोटि विघन टरि जाय।
राई समान बसंदरा[1], केता काठ जराय॥४०॥
लेने को सतनाम है, देने को अन दान।
तरने को आधीनता, बूड़न को अभिमान॥४१॥
जैसो माया मन रम्यो, तैसो नाम रमाय।
तारा मंडल बेधि कै, तब अमरापुर जाय॥४२॥
नाम पीव का छोड़ि के, करै आन का जाप।
वेस्या केरा पूत ज्यों, कहै कौन को बाप॥४३॥
पावक रूपी नाम है, सब घट रहा समाय।
चित चकमक लागै नहीं, धूआँ ह्वै ह्वै जाय॥४४॥

---

(१) आग।

नाम बिना बेकाम है, छप्पन कोटि बिलास।
का इंद्रासन बैठिबो, का बैकुंठ निवास ॥४५॥
लूटि सकै तो लूटि ले, सत्तनाम की लूटि।
पाछे फिरि पछताहुगे, प्रान जाहिँ जब छूटि ॥४६॥

॥ सोरठा ॥

सतगुरु का उपदेस, सत्त नाम निज सार है।
यह निज मुक्ति सँदेस, सुनो संत सत भाव से ॥४७॥
क्यों छूटै जम जाल, बहु बंधन जिव बंधिया।
काटैं दीनदयाल, कर्म फंद इक नाम से ॥४८॥
काटहु जम के फंद, जेहिँ फंदे जग फंदिया।
कटै तो होय निसंक, नाम खड़ग सतगुरु दियो ॥४९॥
तजै काग की देह, हंस दसा की सुरति पर।
मुक्ति सँदेसा येह, सत्त नाम परमान अस ॥५०॥
सत्त नाम बिस्वास, कर्म भर्म सब परिहरै।
सतगुरु पुरवै आस, जो निरास आसा करै ॥५१॥

सुमिरन का अंग।

सुमिरन से सुख होत है, सुमिरन से दुख जाय।
कह कबीर सुमिरन किये, साइँ माहिँ समाय ॥१॥
राजा राना राव रंक, बड़ा जो सुमिरै नाम।
कह कबीर बड़ोँ बड़ा, जो सुमिरै निःकाम ॥२॥
नर नारी सब नरक है, जब लगि देह सकाम।
कह कबीर सोइ पीव को, जो सुमिरै निःकाम ॥३॥
दुख में सुमिरन सब करै, सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै, तो दुख काहे होय ॥४॥

सुख में सुमिरन ना किया, दुख में कीया याद।
कह कबीर ता दास की, कौन सुनै फिरियाद ॥५॥
सुमिरन की सुधि यौं करौ, जैसे कामी काम।
एक पलक बिसरै नहीं, निसु दिन आठो जाम ॥६॥
सुमिरन की सुधि यौं करौ, ज्यौं गागर पनिहार।
हालै डोलै सुरति में, कहै कबीर बिचार ॥७॥
सुमिरन की सुधि यौं करौ, ज्यौं सुरभी[1] सुत माहिँ।
कह कबीर चारा चरत, बिसरत कबहूँ नाहिँ ॥८॥
सुमिरन की सुधि यौं करौ, जैसे दाम कँगाल।
कह कबीर बिसरै नहीं, पल पल लेहि सम्हाल ॥९॥
सुमिरन से मन लाइये, जैसे नाद कुरंग[2]।
कह कबीर बिसरै नहीं, प्रान तजै तेहि संग ॥१०॥
सुमिरन से मन लाइये, जैसे दीप पतंग।
प्रान तजै छिन एक में, जरत न मोड़ै अंग ॥११॥
सुमिरन से मन लाइये, जैसे कीट भिरंग।
कबीर बिसरै आप को, होय जाय तेहि रंग ॥१२॥
सुमिरन से मन लाइये, जैसे पानी मीन।
प्रान तजै पल बीछुरे, सत कबीर कहि दीन ॥१३॥
सुमिरन सुरति लगाइ के, मुख तेँ कछू न बोल।
बाहर के पट देइ के, अंतर के पट खोल ॥१४॥
माला फेरत मन खुसी, ता तेँ कछू न होय।
मन माला के फेरते, घट उँजियारो होय ॥१५॥
माला फेरत जुग गया, फिरा न मनका फेर।
कर का मनका डारि दे, मन का मनका फेर ॥१६॥

---

(१) गऊ। (२) मृग।

अजपा सुमिरन घट बिषे, दीन्हा सिरजनहार ।
ताही से मन लगि रहा, कहै कबीर बिचार ॥१७॥
कबीर माला मनहिँ की, और संसारी भेख ।
माला फेरे हरि मिलैँ, तो गले रहट के देख ॥१८॥
कबीर माला काठ की, बहुत जतन का फेर ।
माला स्वास उस्वास की, जा मेँ गाँठ न मेर ॥१९॥
माला मो से लड़ि पड़ी, का फेरत है मोय ।
मन के माला फेरि ले, गुरु से मेला होय ॥२०॥
क्रिया करै अँगुरी गनै, मन धावै चहुँ ओर ।
जेहि फेरे साईं मिलै, सो भया काठ कठोर ॥२१॥
माला फेरे कहा भयो, हृदय गाँठि नहिँ खोय ।
गुरु चरनन चित राचिये, तो अमरापुर जोय ॥२२॥
बाहर क्या दिखलाइये, अंतर जपिये नाम ।
कहा महोला खलक से, पड़ा धनी से काम ॥२३॥
सहजेही धुन होत है, हर दम घट के माहिँ ।
सुरत सबद मेला भया, मुख की हाजत नाहिँ ॥२४॥
माला तो कर मेँ फिरै, जीभ फिरै मुख माहिँ ।
मनुवाँ तो दहु दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिँ ॥२५॥
तन थिर मन थिर बचन थिर, सुरत निरत थिर होय ।
कह कबीर इस पलक को, कलप न पावै कोय ॥२६॥
जाप मरै अजपा मरै, अनहद भी मरि जाय ।
सुरत समानी सबद मेँ, ताहि काल नहिँ खाय ॥२७॥
जा को पूँजी स्वास है, छिन आवै छिन जाय ।
ता को ऐसा चाहिये, रहै नाम लौ लाय ॥२८॥
कहता हूँ कहि जात हूँ, कहौँ बजाये ढोल ।
स्वासा खाली जात है, तीन लोक का मोल ॥२९॥

ऐसे महँगे मोल का, एक स्वास जो जाय।
चौदह लोक न पटतरे, काहे धूर मिलाय ॥३०॥
कबीर छुधा है कूकरी, करत भजन में भंग।
या को टुकड़ा डारि करि, सुमिरन करो निसंक ॥३१॥
चिंता तो सतनाम की, और न चितवै दास।
जो कछु चितवै नाम बिनु, सोई काल की फाँस ॥३२॥
सत्तनाम को सुमिरते, उधरे पतित अनेक।
कह कबीर नहिँ छाड़िये, सत्तनाम की टेक ॥३३॥
नाम जपत कन्या भली, साकट भला न पूत।
छेरी के गल गलथना, जा में दूध न मूत ॥३४॥
नाम जपत दरिद्री भला, टूटी घर की छानि।
कंचन मंदिर जारि दे, जहँ गुरु भक्ति न जान ॥३५॥
पाँच सखी पिउ पिउ करैं, छठा जो सुमिरै मन।
आई सुरत कबीर की, पाया नाम रतन ॥३६॥
तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझ में रही न हूँ।
वारी तेरे नाम पर, जित देखूँ तित तूँ ॥३७॥
सुमिरन मारग सहज का, सतगुरु दिया बताय।
स्वास उस्वास जो सुमिरता, इक दिन मिलसी आय ॥३८॥
माला स्वास उस्वास की, फेरै कोइ निज दास।
चौरासी भरमै नहीं, कटै करम की फाँस ॥३९॥
ज्ञान कथै बकि बकि मरै, कोई करै उपाय।
सतगुरु हम से यों कह्यो, सुमिरन करो समाय ॥४०॥
कबीर सुमिरन सार है, और सकल जंजाल।
आदि अंत मधि सोधिया, दूजा देखा ख्याल ॥४१॥
निज सुख सुमिरन नाम है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा बाचा कर्मना, कबीर सुमिरन सार ॥४२॥

थोड़ा सुमिरन बहुत सुख, जो करि जानै कोय।
सूत न लगै बिनावनी, सहजै अति सुख होय ॥४३॥
साईं यों मत जानियो, प्रीति घटै मम चित्त।
मरूँ तो तुम सुमिरत मरूँ, जीवत सुमिरूँ नित्त ॥४४॥
जप तप संजम साधना, सब सुमिरन के माहिँ।
कबीर जानै भक्त जन, सुमिरन सम कछु नाहिँ ॥४५॥
सहकामी सुमिरन करै, पावै उत्तम धाम।
निःकामी सुमिरन करै, पावै अविचल नाम ॥४६॥
हम तुम्हरो सुमिरन करैं, तुम मोहिँ चितवत नाहिँ।
सुमिरन मन की प्रीति है, सो मन तुमहीं माहिँ ॥४७॥
कबिरा हरि हरि सुमिरि ले, प्रान जाहिँगे छूटि।
घर के प्यारे आदमी, चलते लैंगे लूटि ॥४८॥
कबीर निर्भय नाम जपु, जब लगि दीवा बाति।
तेल घटे बाती बुझै, तब सोवो दिन राति ॥४९॥
जैसा माया मन रमै, तैसे नाम रमाय।
तारा मंडल छाड़ि कै, जहाँ नाम तहँ जाय ॥५०॥
कबीर चित चंचल भया, चहुँ दिसि लागी लाय[1]।
गुरु सुमिरन हाथे घड़ा, लीजै बेगि बुझाय ॥५१॥
कबीर मुख सोई भला, जा मुख निकसै नाम।
जा मुख नाम न नीकसै, सो मुख कौने काम ॥५२॥
सत्त नाम को सुमिरना, हँस करि भावैं खीज[2]।
उलटा सुलटा नीपजै, खेत पड़ा ज्यों बीज ॥५३॥
स्वास सुफल सो जानिये, जो सुमिरन में जाय।
और स्वास योंही गये, करि करि बहुत उपाय ॥५४॥

(१) आग (२) चाहे हँसते हुए चाहे खिजलाहट के साथ।

कहा भरोसा देह का, बिनसि जाय छिन माहिँ।
स्वास स्वास सुमिरन करौ, और जतन कछु नाहिँ ॥५५॥
जिवना थोरा ही भला, जो सत सुमिरन होय।
लाख बरस का जीवना, लेखे धरै न कोय ॥५६॥
बिना साच सुमिरन नहीं, बिन भेदी भक्ति न सोय।
पारस में परदा रहा, कस लोहा कंचन होय ॥५७॥
कंचन केवल गुरु भजन, दूजा काँच कथीर।
झूठा जाल जँजाल तजि, पकड़ो साच कबीर ॥५८॥
हृदय सुमिरनी नाम की, मेरा मन मसगूल[1]।
छबि लागे निरखत रहौं, मिटि गया संसय सूल ॥५९॥
सुमिरन का हल जोतियो, बीजा नाम जमाय।
खंड ब्रह्मंड सूखा पड़ै, तहू न निस्फल जाय ॥६०॥
देखा देखी सब कहै, भोर भये हरि नाम।
अर्ध रात कोइ जन कहै, खानाजाद गुलाम ॥६१॥
नाम रटत इस्थिर भया, ज्ञान कथत भया लीन।
सुरत सबद एकै भया, जलही ह्वैगा मीन ॥६२॥
कबीर धारा अगम की, सतगुरु दई लखाय।
उलटि ताहि सुमिरन करो, स्वामी संग मिलाय ॥६३॥

शब्द का अंग।

कबीर सबद सरीर में, बिन गुन[2] बाजै ताँत।
बाहर भीतर रमि रहा, ता तेँ छूटी भ्रांति ॥१॥
जो जन खोजी सबद का, धन्य संत है सोय।
ह कबीर सबदै गहे, कबहुँ न जाय बिगोय ॥२॥

(१) लगा हुआ। (२) रस्सी।

सबद सबद बहु अंतरा, सबद सार का सीर।
सबद सबद का खोजना, सबद सबद का पीर ॥३॥
सबद सबद बहु अंतरा, सार सबद चित देय।
जा सबदै साहिब मिलै, सोई सबद गहि लेय ॥४॥
सबद सबद सब कोइ कहै, वो तो सबद बिदेह।
जिभ्या पर आवै नहीं, निरखि परखि करि देह ॥५॥
एक सबद सुखरास है, एक सबद दुखरास।
एक सबद बंधन कटै, एक सबद गल फाँस ॥६॥
सबद सबद सब कोइ कहै, सबद के हाथ न पाँव।
एक सबद औषधि करै, एक सबद करै घाव ॥७॥
सीखै सुनै बिचारि लै, ताहि सबद सुख देय।
बिना समझ सबदै गहै, कछू न लाहा लेय ॥८॥
सबद हमारा आदि का, पल पल करिये याद।
अंत फलैगी माहिँ की, बाहर की सब याद ॥९॥
सबदहि मारे मरि गये, सबदहि तजिया राज।
जिनजिनसबद पिछानिया, सरिया तिन का काज ॥१०॥
सबद गुरू को कीजिये, बहुतक गुरू लबार।
अपने अपने लोभ को, ठौर ठौर बटमार ॥११॥
सबद हमारा हम सबद के, सबदहि लेय परख।
जो तूँ चाहै मुक्ति को, अब मत जाय सरक्क ॥१२॥
सबद हमारा हम सबद के, सबद ब्रह्म का कूप।
जो चाहै दीदार को, परख सबद का रूप ॥१३॥
एक सबद गुरुदेव का, जा का अनँत बिचार।
पंडित थाके मुनि जना, बेद न पावै पार ॥१४॥
सबद बिना स्रुति आँधरी, कहो कहाँ को जाय।
द्वार न पावै सबद का, फिरि फिरि भटका खाय ॥१५॥

यही बड़ाई सबद की, जैसे चुम्बक भाय।
बिना सबद नहिं ऊबरै, केता करै उपाय ॥१६॥
सही टेक है तासु की, जा के सतगुरु टेक।
टेक निबाहै देह भरि, रहै सबद मिलि एक ॥१७॥
काल फिरै सिर ऊपरे, जीवहिं नजरि न आइ।
कह कबीर गुरु सबद गहि, जम से जीव बचाइ ॥१८॥
ऐसा मारा सबद का, मुआ न दीसै कोय।
कह कबीर सो ऊबरै, धड़ पर सीस न होय ॥१९॥
सबद बराबर धन नहीं, जो कोइ जानै बोल।
हीरा तो दामों मिलै, सबदहिं मोल न तोल ॥२०॥
सबद दुराया ना दुरै, कहौं जो ढोल बजाय।
जो जन होवै जौहरी, लेहै सीस चढ़ाय ॥२१॥
सबद पाय सुति राखही, सो पहुँचै दरबार।
कह कबीर तहँ देखई, बैठे पुरुष हमार ॥२२॥
औरै दारू सब करी, पै सुभाव की नाहिं।
सो दारू सतगुरु करी, रहै सबद के माहिं ॥२३॥
सबद उपदेस जो मैं कहूँ, जो कोइ मानै संत।
कहै कबीर बिचारि के, ताहि मिलाऔं कंत ॥२४॥
मता हमारा मंत्र है, हम सा होय सो लेय।
सबद हमारा कल्प-तरु, जो चाहै सो देय ॥२५॥
रैन समानी भानु में, भानु अकासे माहिं।
अकास समाना सबद में, सबद परे कछु नाहिं ॥२६॥
सबद कहाँ से उठत है, कहँ को जाइ समाय।
हाथ पाँव वा के नहीं, कैसे पकरा जाय ॥२७॥
सहस कँवल तेँ उठत है, सुन्नहिं जाय समाय।
हाथ पाँव वा के नहीं, सुति तेँ पकरा जाय ॥२८॥

सबद कहाँ तें आइया, कहाँ सबद का भाव।
कहाँ सबद का सीस है, कहाँ सबद का पाँव ॥२९॥
सबद ब्रह्मंड तें आइया, मध्य सबद का भाव।
ज्ञान सबद का सीस है, अज्ञान सबद का पाँव ॥३०॥
सीतल सबद उचारिये, अहं आनिये नाहिं।
तेरा प्रीतम तुज्झ मे, सत्रू भी तुज्झ माहिं ॥३१॥
सबद भेद तब जानिये, रहै सबद के माहिं।
सबदै सबद प्रगट भया, दूजा दीखै नाहिं ॥३२॥
सोई सबद निज सार है, जो गुरु दिया बताय।
बलिहारी वा गुरू की, सिष्य बिगोय[1] न जाय ॥३३॥
वह मोती मत जानियो, पुहै पोत के साथ।
यह तो मोती सबद का, बेंधि रहा सब गात ॥३४॥
बलिहारी वहि दूध की, जा में निकसत घीव।
आधी साखि कबीर की, चार बेद को जीव ॥३५॥
सबद अहै गाहक नहीं, बस्तु सो गरुआ मोल।
बिना दाम को मानवा, फिरता डाँवाँडोल ॥३६॥
रैनि तिमिर नासत भयो, जबही भानु उगाय।
सार सबद के जानते, कर्म भर्म मिटि जाय ॥३७॥
जंत्र मंत्र सब झूठ है, मत भरमो जग कोय।
सार सबद जाने बिना, कागा हंस न होय ॥३८॥
सत्त सबद निज जानि कै, जिन कीन्हा परतीति।
काग कुमति तजि हंस ह्वै, चले सो भव जल जीति ॥३९॥
सबद खोजि मन बस करै, सहज जोग है येहि।
सत्त सबद निज सार है, यह तो झूठी देहि ॥४०॥

---

(१) भरम या धोखे में न पड़ जाय।

सार सब्द जाने बिना, जिव परलै में जाय।
काया माया थिर नहीं, सब्द लेहु अरथाय ॥४१॥
कर्म फंद जग फंदिया, जप तप पूजा ध्यान।
जेहि सब्द तें मुक्ति है, सो न परै पहिचान ॥४२॥
सतजुग त्रेता द्वापरा, यहि कलिजुग अनुमान।
सार सब्द इक साच है, और झूठ सब ज्ञान ॥४३॥
पृथ्वी अप[1] हूँ तेज नहिं, नहीं वायु आकास।
अललपच्छ तहँ है रहै, सत्त सब्द परकास ॥४४॥

॥ सोरठा ॥

सतगुरु सब्द प्रमान, अनहद बानी ऊचरै।
और झूठ सब ज्ञान, कहै कबीर बिचारि कै ॥४५॥
ज्ञानी सुनहु सँदेस, सब्द बिबेकी पेखिया।
बह्यौ मुक्तिपुर देस, तीनि लोक के बाहिरे ॥४६॥
मन तहँ गगन समाय, धुनि सुनि सुनि कै मगन है।
नहिँ आवै नहिँ जाय, सुन्न सब्द थिति पावही ॥४७॥
ज्ञानी करहु बिचार, सतगुरु ही से पाइये।
सत्त सब्द निज सार, और सबै बिस्तार है ॥४८॥
जग में बहु परिपंच, ता में जीव भुलान सब।
नहिँ पावै कोइ संच, सार सब्द जाने बिना ॥४९॥
गहै सब्द निज मूल, सिंधहिँ बुंद समान है।
सूच्छम में अस्थूल, बीज बृच्छ बिस्तार ज्यों। ५०॥

॥ साखी ॥

जाप मरै अजपा मरै, अनहद हूँ मरि जाय।
सुरत समानी सबद में, ता को काल न खाय ॥५१॥

---

(१) जल।

बिनती का अंग।

बिनवत हौं कर जोरि कै, सुनिये कृपा-निधान।
साध सँगति सुख दीजिये, दया गरीबी दान ॥१॥
जो अब के सतगुरु मिलैं, सब दुख आखैं(१) रोय।
चरनों ऊपर सीस धरि, कहौं जो कहना होय ॥२॥
मेरे सतगुरु मिलैंगे, पूछैंगे कुसलात।
आदि अंत की सब कहौं, उर अंतर की बात ॥३॥
सुरति करौ मेरे साइयाँ, हम हैं भवजल माहिं।
आपे ही बहि जायँगे, जो नहिं पकरौ बाहिं ॥४॥
क्या मुख लै बिनती करौं, लाज आवत है मोहिं।
तुम देखत औगुन करौं, कैसे भावौं तोहिं ॥५॥
सतगुरु तोहि बिसारि कै, का के सरनै जायँ।
सिव बिरंचि मुनि नारदा, हिरदे नाहिं समायँ ॥६॥
मैं अपराधी जनम का, नख सिख भरा बिकार।
तुम दाता दुख-भन्जना, मेरी करो सम्हार ॥७॥
अवगुन मेरे बाप जी, बकस गरीब-निवाज।
जो मैं पूत कपूत हौं, तऊ पिता को लाज ॥८॥
औगुन किये तो बहु किये, करत न मानी हार।
भावै बंदा बकसिये, भावै गरदन मार ॥९॥
जो मैं भूल बिगाड़िया, ना करु मैला चित्त।
साहिब गरुआ लोड़िये, नफर बिगाड़ै नित्त ॥१०॥
साईं केरा बहुत गुन, औगुन कोई नाहिं।
जो दिल खोजौं आपना, सब औगुन मुझ माहिं ॥११॥

---

(१) कहूँ।

साहिब तुम जनि बीसरो, लाख लोग लगि जाहिं ।
हम से तुमरे बहुत हैं, तुम सम हमरे नाहिं ॥१२॥
औसर बीता अलप तन, पीव रहा परदेस ।
कलंक उतारो साइयाँ, भानो भरम अँदेस ॥१३॥
कर जोरे बिनती करौं, भवसागर आपार ।
बंदा ऊपर मिहर करि, आवागवन निवार ॥१४॥
अंतरजामी एक तुम, आतम के आधार ।
जो तुम छोड़ो हाथ तैं, कौन उतारै पार ॥१५॥
भवसागर भारी महा, गहिरा अगम अगाह[1] ।
तुम दयाल दाया करो, तब पाओं कछु थाह ॥१६॥
साहिब तुमहिं दयाल हो, तुम लगि मेरी दौर ।
जैसे काग जहाज को, सूझै और न ठौर ॥१७॥
साईं तेरा कछु नहीं, मेरा होय अकाज ।
बिरद[2] तुम्हारे नाम को, सरन परे की लाज ॥१८॥
मेरा मन जो तोहिं से, यों जो तेरा होय ।
अहरन ताना लोह ज्यों, संधि लखै नहिं कोय[3] ॥१९॥
मेरा मन जो तोहिं से, तेरा मन कहिं और ।
कह कबीर कैसे निभै, एक चित्त दुइ ठौर ॥२०॥
मुझ में औगुन तुज्झ गुन, तुझ गुन औगुन मुज्झ ।
जो मैं बिसरौं तुज्झ को, तू मत बिसरै मुज्झ ॥२१॥
मन परतीत न प्रेम रस, ना कछु तन में ढंग ।
ना जानौं उस पीव से, क्योंकर रहसी रंग ॥२२॥
जिन को साईं रँगि दिया, कबहुँ न होहिं कुरंग ।
दिन दिन बानी आगरो[4], चढ़ै सवाया रंग ॥२३॥

(१) अथाह । (२) महिमा । (३) जब दोनों टुकड़े लोहे के गरम हों तब बेमालूम जोड़ लग सकता है । (४) बन्न ।

मेरा मुझ में कछु नहीं, जो कछु है सो तुज्झ।
तेरा तुझ को सौंपते, का लागत है मुज्झ ॥२४॥
औगुनहारा गुन नहीं, मन का बड़ा कठोर।
ऐसे समरथ सतगुरू, ताहि लगावैं ठौर ॥२५॥
तुम तो समरथ साइयाँ, दृढ़ कर पकरो बाहिँ।
धुरही लै पहुँचाइयो, जनि छाड़ो मग माहिँ ॥२६॥
कबीर करत है बीनती, सुनो संत चित लाय।
मारग सिरजनहार का, दीजै मोहिँ बताय ॥२७॥
सतगुरु बड़े दयाल हैं, संतन के आधार।
भवसागरहि अथाह से, खेत उतारैं पार ॥२८॥
भक्ति दान मोहिँ दीजिये, गुरु देवन के देव।
और नहीं कछु चाहिये, निस दिन तेरी सेव ॥२९॥

उपदेश का अंग।

जो तो को काँटा बुवै, ताहि बोव तू फूल।
तोहि फूल को फूल है, वा को है तिरसूल ॥१॥
दुर्बल को न सताइये, जा की मोटी हाय।
बिना जीव की स्वास से[१], लोह भसम ह्वै जाय ॥२॥
कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठगा सुख होत है, और ठगे दुख होय ॥३॥
या दुनिया मेँ आइ के, छाड़ि देय तू ऐंठ।
लेना होइ सो लेइ ले, उठी जात है पैंठ ॥४॥
खाय पकाय लुटाइ ले, हे मनुवाँ मिहमान।
लेना होय सो लेइ ले, यही गोय[२] मैदान ॥५॥

---

(१) भाथी या धैांकनी जो बिना जीव की होती है उसकी हवा से लोहा गल जाता है। (२) गेंद।

लेना होइ सो लेइ ले, कही सुनी मत मान।
कही सुनी जुग जुग चली, आवा गवन बँधान ॥६॥
ऐसी बानी बोलिये, मनका आपा खोय।
औरन को सीतल करै, आपहुँ सीतल होय ॥७॥
जग में बैरी कोइ नहीं, जो मम सीतल होय।
या आपा को डारि दे, दया करै सब कोय ॥८॥
हस्ती चढ़िये ज्ञान की, सहज दुलीचा डारि।
स्वान रूप संसार है, भूँसन दे झख मारि ॥९॥
बाजन देहू जंतरी, कलि कुकही मत छेड़।
तुझे पराई क्या परी, अपनी आप निबेड़ ॥१०॥
कबीर काहे को डरै, सिर पर सिरजनहार।
हस्ती चढ़ि डुरिये नहीं, कूकर भुँसै हजार ॥११॥
आवत गारी एक है, उलटत होय अनेक।
कहै कबीर नहिं उलटिये, वही एक की एक ॥१२॥

॥ सोरठा ॥

गारी मोटा[१] ज्ञान, जो रंचक उर में जरै।
कोटि सँवारै काम, बैरि उलटि पाँयन परै ॥१३॥
गारी ही से ऊपजै, कलह कष्ट औ मीच।
हारि चलै सो साधु है, लागि मरै सो नीच ॥१४॥
हरिजन तो हारा भला, जीतन दे संसार।
हारा सतगुरु से मिलै, जीता जम को लार ॥१५॥
जेता घट तेता मता, घट घट और सुभाव।
जा घट हार न जीत है, ता घट ज्ञान समाव ॥१६॥

---

(१) बड़ा।

जैसा अन्न जल खाइये, तैसा ही मन होय ।
जैसा पानी पीजिये, तैसी बानी सोय ॥१७॥
माँगन मरन समान है, मति कोइ माँगो भीख ।
माँगन तेँ मरना भला, यह सतगुरु की सीख ॥१८॥
उदर समाता माँगि ले, ता को नाहीँ दोष ।
कह कबीर अधिका गहै, ता की गती न मोष ॥१९॥
उदर समाता अन्न ले, तनहिँ समाता चीर ।
अधिकहिँ संग्रह ना करै, ता का नाम फ़कीर ॥२०॥
कथा कीरतन कलि बिषे, भौसागर की नाव ।
कह कबीर जग तरन को, नाहीँ और उपाव ॥२१॥
कथा कीरतन छोड़ करि, करै जो और उपाय ।
कह कबीर ता साध के, पास कोई मत जाय ॥२२॥
कथा कीरतन करन की, जा के निसु दिन रीति ।
कह कबीर वा दास से, निस्चय कीजै प्रीति ॥२३॥
कथा कीरतन रात दिन, जा के उद्यम येह ।
कह कबीर ता साधु की, हम चरनन की खेह ॥२४॥
कथा करो करतार की, निसु दिन साँझ सकार ।
काम कथा को परिहरो, कहै कबीर बिचार ॥२५॥
काम कथा सुनिये नहीँ, सुन करि उपजै काम ।
कहै कबीर बिचार करि, बिसर जात है नाम ॥२६॥
कबीर संगी साधु का, दल आया भरपूर ।
इन्द्रिन को तब बाँधिया, या तन कीया धूर ॥२७॥
कहते को कहि जान दे, गुरु की सीख तु लेइ ।
साकट जन औ स्वान को, फिर जवाब मत देइ ॥२८॥
जो कोइ समझै सैन मेँ, ता से कहिये बैन ।
सैन बैन समझै नहीँ, ता से कछु नहिँ कहन ॥२९॥

बहते को बहि जान दे, मत पकड़ावै ठौर।
समझाया समझै नहीँ, दे दुइ धक्के और ॥३०॥
बहते को मत बहन दे, कर गहि ऐँचहु ठौर।
कहा सुना मानै नहीँ, बचन कहो दुइ और ॥३१॥
बन्दे तू कर बन्दगी, तो पावै दीदार।
औसर मानुष जन्म का, बहुरि न बारम्बार ॥३२॥
मन राजा नायक भया, टाँडा लादा जाय।
हैहै हैहै है रही, पूँजी गई बिलाय ॥३३॥
जीवत कोइ समझै नहीँ, मुआ न कहै सँदेस।
तन मन से परिचय नहीँ, ता को क्या उपदेस ॥३४॥
जेहि जेवरि तेँ जग बँधा, तूँ जनि बँधै कबीर।
जासी आटा लोन ज्योँ, सोन समान सरीर ॥३५॥
जिन गुरु जैसा जानिया, तिन को तैसा लाभ।
ओसे प्यास न भागसी, जल लगि धसै न आब[1] ॥३६॥
जिभ्या को दे बंधने, बहु बोलना निवारि।
सो पारख से संग करु, गुरुमुख सबद बिचारि ॥३७॥
जा की जिभ्या बंद नहिँ, हिरदे नाहीँ साच।
ता के संग न लागिये, घालै बटिया काच[2] ॥३८॥
सकल दुरमती दूर करि, आछो जनम बनाव।
काग गमन गति छाड़ि दे, हंस गमन गति आव ॥३९॥
कर बँदगी बिबेक की, भेष धरे सब कोय।
वह बंदगी बहि जान दे, जहँ सबद बिबेक न होय॥४०॥
साधु भया तो क्या भया, बोलै नाहिँ बिचार।
हतै पराई आतमा, जीभ बाँधि तरवार ॥४१॥

---

(१) पानी। (२) कच्चे रास्ते में यानी कुराह में गिरा देगा।

मधुर बचन है औषधी, कटुक बचन है तीर।
स्रवन द्वार ह्वै संचरै, सालै सकल सरीर ॥४२॥
बोलत ही पहिचानिये, साहु चोर को घाट।
अंतर की करनी सबै, निकसै मुख की बाट ॥४३॥
जिन ढूँढ़ा तिन पाइया, गहिरे पानी पैठि।
जो बौरा डूबन डरा, रहा किनारे बैठि ॥४४॥
ज्ञान रतन की कोठरी, चुप करि दीजै ताल[1]।
पारख आगे खोलिये, कुंजी बचन रसाल ॥४५॥
साध संत तेई जना, जिन माना बचन हमार।
आदि अंत उतपति प्रलय, देखहु दृष्टि पसार ॥४६॥
पानी प्यावत क्या फिरै, घर घर सायर बारि।
जो जन तिरषावंत है, पोवैगा झख मारि ॥४७॥
जो तू चाहै मुझ को, छाड़ि सकल की आस।
मुझ ही ऐसा ह्वै रहै, सब सुख तेरे पास ॥४८॥
चतुराई क्या कीजिये, जो नहिं सबद समाय।
कोटिक गुन सूवा पढ़ै, अंत बिलाई खाय ॥४९॥
अलमस्त फिरे क्या होत है, सुरत लीजिये धोय।
चतुराई नहिँ छूटसी, सुरत सबद मैं पोय ॥५०॥
पढ़ना गुनना चातुरी, यह तो बात सहल।
काम दहल मन बसि करन, गगन चढ़न मुसकल ॥५१॥
पढ़ि पढ़ि के पत्थर भये, लिखि लिखि भये जो ईंट।
कबीर अंतर प्रेम की, लागी नेक न छींट ॥५२॥
नाम भजो मन बसि करो, यही बात है तंत।
काहे को पढ़ि पचि मरो, कोटिन ज्ञान गिरंथ ॥५३॥

---

(1) ताला।

कबीर आधी साखि यह, कोटि ग्रंथ करि जान।
नाम सत्त जग झूठ है, सुरत सबद पहिचान ॥५४॥
करता था तो क्यौं रहा, अब करि क्यौं पछिताय।
बोवे पेड़ बबूल का, आम कहाँ तें खाय ॥५५॥

सामर्थ का अंग।

साहिब से सब होत है, बंदे तें कछु नाहिं।
राई तें पर्वत करै, पर्वत राई नाइँ[1] ॥१॥
बहन वहंता थल करै, थल कर बहन बहोय।
साहिब हाथ बड़ाइया, जस भावै तस होय ॥२॥
साहिब सा समरथ नहीं, गरुआ गहिर गँभीर।
औगुन छाड़ै गुन गहै, छिनक उतारै तीर ॥३॥
ना कछु किया न कर सका, ना करने जोग सरीर।
जो कछु किया साहिब किया, ता तें भया कबीर ॥४॥
जो कछु किया सो तुम किया, मैं कछु कीया नाहिं।
कहौं कहीं जो मैं किया, तुमहीं थे मुझ माहिं ॥५॥
कीया कछू न होत है, अनकीया ही होय।
कीया जो कछु होय तो, करता औरै कोय ॥६॥
जिस नहिं कोई तिसहि तूँ, जिस तूँ तिस सब होय।
दरगह तेरी साइयाँ, मेटि न सक्कै कोय ॥७॥
इत कूआ उत बावड़ी, इत उत थाह अथाह।
दुहूँ दिसा फनि[2] फन कढ़े, समरथ पार लगाहि ॥८॥
घट समुद्र लखि ना परै, उट्ठै लहर अपार।
दिल दरिया समरथ बिना, कौन उतारै पार ॥९॥

---

(१) तुल्य। (२) सांप।

अबरन को क्या बरनिये, मो पै बरनि न जाय।
अबरन बरन तेँ बाहिरा, करि करि थका उपाय ॥१०॥
मो मैं इतनी सक्ति कहँ, गाऊँ गला पसार।
बंदे को इतनी घनी, पड़ा रहै दरबार ॥११॥
साइँ तुझ से बाहिरा, कैाड़ी नाहिँ बिकाय।
जा के सिर पर तू धनी, लाखोँ मोल कराय ॥१२॥
साइँ मेरा बानिया, सहज करै ब्योपार।
बिन डाँड़ी बिन पालरे, तौलै सब संसार ॥१३॥
धन धन साहिब तूँ बड़ा, तेरी अनुपम रीत।
सकल भूप सिर साइयाँ, है कर रहा अतीत ॥१४॥
बालक रूपो साइयाँ, खेलै सब घट माहिँ।
जो चाहै सो करत है, भय काहू का नाहिँ ॥१५॥

निज करता के निर्णय का अंग।

अछै पुरुष एक पेड़ है, निरंजन वा की डार।
तिरदेवा साखा भये, पात भया संसार ॥१॥
नाद बिंदु तेँ अगम अगोचर, पाँच तत्त तेँ न्यार।
तीन गुनन तेँ भिन्न है, पुरुष अलक्ख अपार ॥२॥
तीन गुनन की भक्ति मेँ, भूलि पर्यौ संसार।
कह कबीर निज नाम बिनु, कैसे उतरै पार ॥३॥
हरा होय सूखै सही, योँ तिरगुन बिस्तार।
प्रथमहिँ ता को सुमिरिये, जा का सकल पसार ॥४॥
सबद सुरति के अन्तरे, अलख पुरुष निर्बान।
लखनेहारा लखि लिया, जा को है गुरु ज्ञान ॥५॥

(१) साँप।

हम तो लखा तिहुँ लोक में, तुम क्यों कहौ अलेख।
सार सबद जाना नहीं, धोखे पहिरा भेख ॥६॥
राम कृस्न अवतार हैं, इन को नाहीं माँड।
जिन साहिब स्रिष्टी किया, (सो) किनहुँ न जाया राँड ॥७॥
संपुट माहिँ समाइया, सो साहिब नहिँ होय।
सकल माँड में रमि रहा, मेरा साहिब सोय ॥८॥
साहिब मेरा एक है, दूजा कहा न जाय।
दूजा साहिब जो कहूँ, साहिब खरा रिसाय ॥९॥
जा के मुँह माथा नहीं, नाहीं रूप अरूप।
पुहुप बास तें पातरा, ऐसा तत्त्व अनूप ॥१०॥
देही माहिँ बिदेह है, साहिब सुरत सरूप।
अनँत लोक में रमि रहा, जा के रंग न रूप ॥११॥
बूझो करता आपना, मानो बचन हमार।
पाँच तत्त्व के भीतरे, जा का यह संसार ॥१२॥
चार भुजा के भजन में, भूलि परे सब संत।
कबीर सुमिरै तासु को, जाके भुजा अनंत ॥१३॥
निबल सबल जो जानि कै, नाम धरा जगदीस।
कहै कबीर जनमै मरै, ताहि धरूँ नहिँ सीस ॥१४॥
जनम मरन से रहित है, मेरा साहिब सोय।
बलिहारी वहि पीव की, जिन सिरजा सब कोय ॥१५॥
समुँद पाटि लंका गयो, सीता को भरतार।
ताहि अगस्त अचै[1] गयो, इन में को करतार ॥१६॥
गिरवर धारयो कृस्न जी, द्रोनागिरि हनुमंत।
सेस नाग सब सृष्टि सहारो, इन में को भगवंत ॥१७॥

---

(१) कथा है कि अगस्त मुनि ने समुद्र का पानी सब पी लिया था।

राम कृस्न को जिन किया, सो तो करता न्यार।
अंधा ज्ञान न बूझई, कहै कबीर बिचार ॥१८॥

घट मठ (सर्ब घट ब्यापी) का अंग।

कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूँढ़ै बन माहिँ।
ऐसे घट मेँ पीव है, दुनियाँ जानै नाहिँ ॥१॥
तेरा साँई तुज्झ मेँ, ज्योँ पुहुपन मेँ बास।
कस्तूरी का मिरग ज्योँ, फिरि फिरि ढूँढ़ै घास ॥२॥
जा कारन जग ढूँढ़िया, सो तो घटही माहिँ।
परदा दीया भरम का, ता तेँ सूझै नाहिँ ॥३॥
समझै तो घर मेँ रहै, परदा पलक लगाय।
तेरा साहिब तुज्झ मेँ, अंत कहूँ मत जाय ॥४॥
सब घट मेरा साइयाँ, सूनी सेज न कोय।
बलिहारी वा घट्ट की, जा घट परघट होय ॥५॥
जेता घट तेता मता, बहु बानी बहु भेख।
सब घट ब्यापक ह्वै रहा, सोई आप अलेख ॥६॥
भूला भूला क्या फिरै, सिर पर बँधि गइ बेल।
तेरा साइँ तुज्झ मेँ, ज्योँ तिल माहीँ तेल ॥७॥
ज्योँ तिल माहीँ तेल है, ज्योँ चकमक मेँ आगि।
तेरा साइँ तुज्झ मेँ, जागि सकै तो जागि ॥८॥
ज्योँ नैनन मेँ पूतरी, योँ खालिक घट माहिँ।
मूरख लोग न जानहीँ, बाहर ढूँढ़न जाहिँ ॥९॥
पुहुप मध्य ज्योँ बास है, ब्यापि रहा सब माहिँ।
संतोँ माहीँ पाइये, और कहूँ कछु नाहिँ ॥१०॥
पावक रूपी साइयाँ, सब घट रहा समाय।
चित चकमक लागै नहीँ, ता तेँ बुझि बुझि जाय ॥११॥

समदृष्टी का अंग।

समदृष्टी सतगुरु किया, भर्म किया सब दूर।
भया उँजारा ज्ञान का, ऊगा निर्मल सूर ॥१॥
समदृष्टी सतगुरु किया, दीया अविचल ज्ञान।
जहँ देखौं तहँ एकही, दूजा नाहीं आन ॥२॥
समदृष्टी सतगुरु किया, मेटा भरम विकार।
जहँ देखौं तहँ एकही, साहिब का दीदार ॥३॥
समदृष्टी तब जानिये, सीतल समता होय।
सब जीवन की आतमा, लखै एक सी सोय ॥४॥

भेदी का अंग।

कबीर भेदी भक्त से, मेरा मन पतियाय।
सेरी पावै सबद की, निर्भय आवै जाय ॥१॥
भेदी जानै सबै गुन, अनभेदी क्या जान।
कै जानै गुरु पारखी, कै जा के लागा बान ॥२॥
भेद ज्ञान साबुन भया, सुमिरन निर्मल नीर।
अंतर धोई आतमा, धोया निर्गुन चीर ॥३॥
भेद ज्ञान तौ लौं भला, जौ लौं मेल न होय।
परम जोति प्रगटै जहाँ, तहँ बिकल्प नहिं कोय ॥४॥

परिचय का अंग।

पिउ परिचय तब जानिये, पिउ से हिलमिल होय।
पिउ की लाली मुख पड़ै, परगट दीसै सोय ॥१॥
लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गइ लाल ॥२॥

जिन पावन भुइँ बहु फिरे, घूमे देस बिदेस।
पिया मिलन जब होइया, आँगन भया बिदेस ॥३॥
उलटि समानी आप में, प्रगटी जोति अनंत।
साहिब सेवक एक सँग, खेलैं सदा बसंत ॥४॥
जोगी हुआ झलक लगी, मिटि गया ऐंचा तान।
उलटि समाना आप में, हूआ ब्रह्म समान ॥५॥
हम बासी वा देस के, जहँ सत्तपुरुष की आन।
दुख सुख कोइ ब्यापै नहीं, सब दिन एक समान ॥६॥
हम बासी वा देस के, जहँ बारह मास बिलास।
प्रेम झिरै बिगसै कँवल, तेज पुंज परकास ॥७॥
संसय करौँ न मैं डरौँ, सब दुख दिये निवार।
सहज सुन्न में घर किया, पाया नाम अधार ॥८॥
बिन पाँवन का पंथ है, बिन बस्ती का देस।
बिना देह का पुरुष है, कहै कबीर सँदेस ॥९॥
नोन गला पानी मिला, बहुरि न भरिहै गौन।
सुरत सबद मेला भया, काल रहा गहि मौन ॥१०॥
हिलि मिलि खेलैं सबद से, अंतर रही न रेख।
समझे का मति एक है, क्या पंडित क्या सेख ॥११॥
अलख लखा लालच लगा, कहत न आवै बैन।
निज मन धसा स्वरूप में, सतगुरु दीन्हो सैन ॥१२॥
कहना था सो कहि दिया, अब कछु कहा न जाय।
एक रहा दूजा गया, दरिया लहर समाय ॥१३॥
पिंजर प्रेम प्रकासिया, जागो जोति अनंत।
संसय छूटी भय मिटा, मिला पियारा कंत ॥१४॥
उनमुनि लागी सुन्न में, निसु दिन रहि गलतान।
तन मन की कछु सुधि नहीं, पाया पद निरबान ॥१५॥

उनमुनि चढ़ी अकास को, गई धरनि से छूटि।
हंस चला घर आपने, काल रहा सिर कूटि ॥१६॥
उनमुनि से मन लागिया, गगनहिं पहुँचा जाय।
चाँद बिहूना चाँदना, अलख निरंजनराय ॥१७॥
मेरी मिटि मुक्ता भया, पाया अगम निवास।
अब मेरे दूजा नहीं, एक तुम्हारी आस ॥१८॥
सुरति समानी निरति में, अजपा माहीं जाप।
लेख समाना अलेख में, आपा माहीं आप ॥१९।
सुरति समानी निरति में, निरति रही निरधार।
सुरति निरति परिचय भया, तब खुला सिंधु दुवार ॥२०॥
गुरू मिले सीतल भया, मिटी मोह तन ताप।
निसु बासर सुख-निधि लहौं, अन्तर प्रगटे आप ॥२१॥
कौतुक देखा देह बिनु, रवि ससि बिना उजास।
साहिब सेवा माहिं है, बेपरवाही दास ॥२२॥
पवन नहीं पानी नहीं, नहीं धरनि आकास।
तहाँ कबीरा संत जन, साहिब पास खवास ॥२३॥
अगवानी तो आइया, ज्ञान बिचार बिबेक।
पीछे गुरु भी आयँगे, सारे साज समेत ॥२४॥
पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।
कहिबे की सोभा नहीं, देखे ही परमान ॥२५॥
सुरज समाना चाँद में, दोऊ किया घर एक।
मन का चेता तब भया, पूर्व जनम का लेख ॥२६॥
पिंजर प्रेम प्रकासिया, अन्तर भया उजास।
सुख करि सूती महल में, बानी फूटी बास ॥२७॥
आया था संसार में, देखन को बहु रूप।
कहै कबीरा संत हो, परि गया नजरि अनूप ॥२८

पाया था सो गहि रहा, रसना लागी स्वाद ।
रतन निराला पाइया, जगत टटोला बाद ॥२९॥
कबीर देखा एक अँग, महिमा कही न जाय ।
तेज पुंज परसा धनी, नैनौं रहा समाय ॥३०॥
नैंव बिहूना देहरा, दैंह बिहूना देव ।
तहाँ कबीर बिलंबिया, करै अलख की सेव ॥३१॥
कबीर कमल प्रकासिया, ऊगा निर्मल सूर ।
रैन अँधेरी मिटि गई, बाजै अनहद तूर ॥३२॥
आकासै औंधा कुआँ, पाताले पनिहार ।
जल हंसा कोइ पीवई, बिरला आदि बिचार ॥३३॥
गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहिर गँभीर ।
चहुँ दिसि दमकै दामिनी, भींजै दास कबीर ॥३४॥
गगन मँडल के बीच में, जहाँ सोहंगम डोरि ।
सबद अनाहद होत है, सुरति लगी तहँ मोरि ॥३५॥
दीपक जोया ज्ञान का, देखा अपरं देव ।
चार बेद की गम नहीं, जहाँ कबीरा सेव ॥३६॥
कबीर जब हम गावते, तब जाना गुरु नाहिँ ।
अब गुरु दिल में देखिया, गावन को कछु नाहिँ ॥३७॥
मानसरोवर सुगम जल, हंसा केलि कराय ।
मुकताहल मोती चुगै, अब उड़ि अंत न जाय ॥३८॥
सुख मँडल में घर किया, बाजै सबद रसाल ।
रोम रोम दीपक भया, प्रगटे दीनदयाल ॥३९॥
पूरे से परिचय भया, दुख सुख मेला दूरि ।
जम से बाकी कटि गई, साईं मिला हजूर ॥४०॥
सुरति उड़ानी गगन को, चरन बिलंबी जाय ।
सुख पाया साहिब मिला, आनँद उर न समाय ॥४१॥

जा बन सिंह न संचरै, पंछी उड़ि नहिँ जाय।
रैन दिवस की गम नहीँ, (तहँ) रहा कबीर समाय ॥४२॥

कबीर तेज अनंत का, माना सूरज सैन।
पति सँग जागी सुन्दरी, कौतुक देखा नैन ॥४३॥

अगम अगोचर गम नहीँ, जहाँ झिलमिलै जोत।
तहाँ कबीरा बंदगी, पाप पुन्य नहिँ छोत ॥४४॥

कबीर मन मधुकर भया, किया नर तरु वास।
कँवल जो फूला नीर बिन, कोइ निरखै निज दास ॥४५॥

सीप नहीँ सायर नहीँ, स्वाँति बुंद भी नाहिँ।
कबीर मोती नीपजे, सुन्न सिखर घट माहिँ ॥४६॥

घट मेँ औघट पाइया, औघट माहीँ घाट।
कह कबीर परिचय भया, गुरू दिखाई बाट ॥४७॥

जहँ मोतियन की झालरी, हीरन का परकास।
चाँद सूर की गम नहीँ, दरसन पावै दास ॥४८॥

कछु करनी कछु कर्म गति, कछु पूरबला लेख।
देखो भाग कबीर का, दोसत[1] किया अलेख ॥४९॥

पानी हीँ तेँ हिम भया, हिम हीँ गया बिलाय।
कबीर जो था सोइ भया, अब कछु कहा न जाय ॥५०॥

जा कारन मैँ जाय था, सो तो मिलिया आय।
साईँ ते सन्मुख भया, लगा कबीरा पाँय ॥५१॥

पंछी उड़ाना गगन को, पिंड रहा परदेस।
पानी पीया चोँच बिन, भूल गया यह देस ॥५२॥

सुचि[2] पाया सुख ऊपजा, दिल दरिया भरपूर।
सकल पाप सहजे गया, साहिब मिला हजूर ॥५३॥

---

(१) मित्र (२) पवित्रता।

तन भीतर मन मानिया, बाहर कतहुँ न लाग।
ज्वाला तैं फिरि जल भया, बुझी जलन्ती आग ॥५४॥
तत पाया तन बीसरा, मन धाया धरि ध्यान।
तपन मिटी सीतल भया, सुन्न किया अस्नान ॥५५॥
कबीर दिल दरिया मिला, फल पाया समरत्थ।
सायर माहिँ ढँढोलता, हीरा चढ़ि गया हत्थ ॥५६॥
जा कारन मैं जाय था, सो तो पाया ठौर।
सोही फिर आपन भया, जा को कहता और ॥५७॥
कबीर देखा इक अगम, महिमा कही न जाय।
तेज पुंज परसा धनी, नैनौं रहा समाय ॥५८॥
गरजै गगन अमी चुवै, कदली कमल प्रकास।
तहाँ कबीरा बन्दगी, करि कोई निज दास ॥५९॥
जा दिन किरतम ना हता, नहीं हाट नहिँ बाट।
हता कबीरा संत जन, देखा औघट घाट ६०॥
नहीं हाट नहिँबाट था, नहिँ धरती नहिँ नीर।
असंख जुग परलय गया, तब की कहै कबीर ॥६१॥
पाँच तत्त गुन तीन के, आगे भक्ति मुकाम।
जहाँ कबीरा घर किया, तहँ दत्त[1] न गोरख राम ॥६२॥
सुरनर मुनि जन औलिया, यह सब उरली तीर।
अलह राम की गम नहीं, तहँ घर किया कबीर ६३॥
हम बासी उस देस के, जहाँ ब्रह्म का खेल।
दीपक देखा गैब का, बिन बाती बिन तेल ॥६४॥
हम बासी उस देस के, (जहँ) जाति बरन कुल नाहिँ।
सबद मिलावा ह्वै रहा, देँह मिलावा नाहिँ ॥६५॥

---

(१) दत्तात्रेय।

जब दिल मिला दयाल से, तब कुछ अंतर नाहिँ ।
पाला गलि पानी मिला, योँ हरिजन हरि माहिँ ॥६६॥
कबीर कमल प्रकासिया, ब्रह्म वास तहँ होय ।
मन भँवरा जहँ लुबधिया, जानैगा जन कोय ॥६७॥
सून्न सरोवर मीन मन, नीर तीर सब देव ।
सुधा सिंधु सुख बिलसही, कोइ विरला जाने भेव ॥६८॥
मैं लागा उस एक से, एक भया सब माहिँ ।
सब मेरा मैं सबन का, तहाँ दूसरा नाहिँ ॥६९॥
गुन इंद्री सहजै गये, सतगुरु करी सहाय ।
घट में नाम प्रगट भया, बकि बकि मरै बलाय ॥७०॥

मौन का अंग ।

भारी कहूँ तो बहु डरूँ, हलुका कहूँ तो झीठ[1] ।
मैं क्या जानूँ पीव को, नैना कछू न दीठ ॥१॥
दीठा है तो कस कहूं, कहूं तो को पतियाय ।
साईं जस तैसा रहो, हरखि हरखि गुन गाय ॥२॥
ऐसो अद्भुत मत कथो, कथो तो धरो छिपाय ।
बेद कुराना ना लिखी, कहूं तो को पतियाय ॥३॥
जो देखै सो कहै नहिँ, कहै सो देखै नाहिँ ।
सुनै सो समझावै नहीँ, रसना दृग सरवन काहि ॥४॥
जो पकरै सो चलै नहिँ, चलै सो पकरै नाहिँ ।
कह कबीर यह साखि को, अरथ समझ मन माहिँ ॥५॥
गगन दुवारे मन गया, करै अमी रस पान ।
रूप सदा झलकत रहै, गगन मँडल गलतान ॥६॥

---

(१) झूठ ।

जानि बूझि जड़ होइ रहै, बल तजि निर्बल होय।
कह कबीर वा दास को, गंजि सकै नहिं कोय ॥७॥
बाद बिबादे बिष घना, बोले बहुत उपाध।
मौनि गहै सब की सहै, सुमिरै नाम अगाध ॥८॥

सजीवन का अंग।

जरा मीच व्यापै नहीं, मुआ न सुनिये कोय।
चलु कबीर वा देस को, जहँ बैद साइयाँ होय ॥१॥
भवसागर तें यौं रहो, ज्यौं जल कँवल निराल।
मनुवा वहाँ लै राखिये, जहाँ नहीं जम काल ॥२॥
कबीर जोगी बन बसा, खनि खाया कँदमूल।
ना जानौं केहि जड़ी से, अमर भया अस्थूल ॥३॥
कबीर तो पिउ पै चला, माया मोह से तोरि।
गगन मँडल आसन किया, काल रहा मुख मोरि ॥४॥
कबीर मन तीखा किया, लाइ बिरह खरसान।
चित चरनौं से चिपटिया, का करै काल का बान ॥५॥

जीवत मृतक का अंग।

जीवत मिरतक होइ रहै, तजै खलक़ की आस।
रच्छक समरथ सतगुरू, मत दुख पावै दास ॥१॥
कबीर काया समुँद है, अंत न पावै कोय।
मिरतक होइ के जो रहै, मानिक लावै सोय ॥२॥
मैं मरजीवा[1] समुँद का, डुबकी मारी एक।
मूठी लाया ज्ञान की, जा में बस्तु अनेक ॥३॥

---

(१) समुद्र में डुबकी मार कर मोती निकालने वाला।

डुबकी मारी समुँद में, निकसा जाय अकास।
गगन मँडल में घर किया, हीरा पाया दास ॥४॥
हरि हीरा क्यौं पाइ है, जिन जीवे की आस।
गुरु दरिया से काढ़सो, कोइ मरजीवा दास ॥५॥
सुन्न सहर में पाइया, जहँ मरजीवा मन।
कबिरा चुनि चुनि ले गया, अंतर नाम रतन ॥६॥
मैं मरजीवा समुँद का, पैठा सप्त पताल।
लाज कानि कुल मेटि के, गहि ले निकसा लाल ॥७॥
मोती निपजै सीप में, सीप समुंदर माहिँ।
कोइ मरजीवा काढ़सी, जीवन की गम नाहिँ ॥८॥
गुरु दरिया सूभर[1] भरा, जा में मुक्ता लाल।
मरजीवा ले नीकसै, पहिरि छिमा को खाल ॥९॥
खरी कसौटी नाम की, खोटा टिकै न कोय।
नाम कसौटी सो टिकै, जो जीवत मिरतक होय ॥१०॥
ऊँचा तरवर[2] गगन फल, बिरला पंछी खाय।
इस फल को तो सो चखै, जो जीवत ही मरि जाय ॥११॥
जब लग आस सरीर की, मिरतक हुआ न जाय।
काया माया मन तजै, चौड़े रहै बजाय ॥१२॥
कबीर मन मिरतक भया, दुरबल भया सरीर।
पाछे लागे हरि फिरैं, कहैं कबीर कबीर ॥१३॥
मन को मिरतक देखि के, मत मानै बिस्वास।
साध जहाँ लौं भय करैं, जब लग पिंजर स्वास ॥१४॥
मैं जानौं मन मरि गया, मरि के हूआ भूत।
मूए पीछे उठि लगा, ऐसा मेरा पूत ॥१५॥

---

(१) प्रकाशमान (२) पेड़

मरते मरते जग मुआ, औसर मुआ न कोय।
दास कबीरा यों मुआ, बहुरि न मरना होय ॥१६॥
बैद मुआ रोगी मुआ, मुआ सकल संसार।
एक कबीरा ना मुआ, जा के नाम अधार ॥१७॥
जीवन से मरना भला, जो मरि जानै कोय।
मरने पहिले जो मरै, (तो) अजर रु अम्मर होय ॥१८॥
मन की मनसा मिटि गई, अहं गई सब छूट।
गगन मँडल में घर किया, काल रहा सिर कूट ॥१९॥
मोहिं मरने का चाव है, मरौं तो गुरू दुवार।
मत गुरु बूझै बात री, कोइ दास मुआ दरबार ॥२०॥
जा मरने से जग डरै, मेरे मन आनंद।
कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरन परमानंद ॥२१॥
भक्त मरे क्या रोइये, जो अपने घर जाय।
रोइये साकित बापुरे, जो हाटो हाट बिकाय ॥२२॥
मरना भला बिदेस का, जहँ अपना नहिं कोय।
जीव जंत भोजन करैं, सहज महोच्छव होय ॥२३॥
कबीर मरि मरघट गया, किनहुँ न बूझी सार।
हरि आगे आदर लिया, ज्यौं गऊ बछा की लार ॥२४॥
सूली ऊपर घर करै, बिष का करै अहार।
ता को काल कहा करै, जो आठ पहर हुसियार ॥२५॥
जिन पाँवन भुइँ बहु फिरा, देखा देस बिदेस।
तिन पाँवन थिति पकरिया, आँगन भया बिदेस ॥२६॥
पाँच पचीसो मारिया, पापी कहिये सोय।
यहि परमारथ बूझि के, पाप करो सब कोय ॥२७॥
आपा मेटे गुरु मिलै, गुरु मेटे सब जाय।
अकथ कहानी प्रेम की, कहे न कोइ पतियाय ॥२८॥

घर जारे घर ऊबरै, घर राखे घर जाय।
एक अचंभा देखिया, मुआ काल को खाय ॥२९॥
कबीर चेरा संत का, दासनहू का दास।
अब तो ऐसा होइ रहु, ज्यौं पाँव तले की घास ॥३०॥
रोड़ा होइ रहु बाट का, तजि आपा अभिमान।
लोभ मोह तृस्ना तजै, ताहि मिलै निज नाम ॥३१॥
रोड़ा भया तो क्या भया, पंथी को दुख देय।
साधू ऐसा चाहिये, ज्यौं पैंड़े की खेह ॥३२॥
खेह भई तो क्या भया, उड़ि उड़ि लागै अंग।
साधू ऐसा चाहिये, जैसे नीर निपंग ॥३३॥
नीर भया तो क्या भया, ताता सीरा जोय।
साध ऐसा चाहिये, जो हरि ही जैसा होय ॥३४॥
हरि भया तो क्या भया, जो करता हरता होय।
साधू ऐसा चाहिये, जो हरि भज निरमल होय ॥३५॥
निरमल भया तो क्या भया, निरमल माँगै ठौर।
मल निरमल तैं रहित है, ते साधू कोइ और ॥३६॥

साध का अंग।

साध बड़े परमारथी, घन ज्यौं बरसैं आय।
तपन बुझावैं और की, अपनो पारस लाय ॥१॥
सद कृपाल दुख परिहरन, वैर भाव नहिं दोय।
छिमा ज्ञान सत भाखही, हिंसा रहित जो होय ॥२॥
दुख सुख एक समान है, हरष सोक नहिं व्याप ॥
उपकारी निःकामता, उपजै छोह न ताप ॥३॥
सदा रहै संतोष मैं, धरम आप दृढ़ धार।
आस एक गुरुदेव की, और न चित्त बिचार ॥४॥

सावधान औ सीलता, सदा प्रफुल्लित गात ।
निरबिकार गम्भीर मति, धीरज दया बसात ॥५॥
निरबैरी निःकामता, स्वामी सेती नेह ।
बिषया से न्यारा रहै, साधन का मति येह ॥६॥
मान अपमान न चित धरै, औरन को सनमान ।
जो कोई आसा करै, उपदेसै तेहि ज्ञान ॥७॥
सीलवंत दृढ़ ज्ञान मति, अति उदार चित होय ।
लज्यावान अति निछलता, कोमल हिरदा सोय ॥८॥
दयावंत धरमक ध्वजा, धीरजवान प्रमान ।
संतोषी सुखदायक रु, सेवक परम सुजान ॥९॥
ज्ञानी अभिमानी नहीं, सब काहू से हेत ।
सत्यवान परस्वारथी, आदर भाव सहेत ॥१०॥
निस्चय भल अरु दृढ़ मता, ये सब लच्छन जान ।
साध सोई है जगत में, जो यह लच्छनवान ॥११॥
ऐसा साधू खोजि के, रहिये चरनौं लाग ।
मिटै जनम की कल्पना, जा के पूरन भाग ॥१२॥
सिहौं के लेहँड़े नहीं, हंसौं की नहिं पाँत ।
लालौं की नहिं बोरियाँ, साध न चलैं जमात[१] ॥१३॥
सब बन तो चन्दन नहीं, सूरा का दल नाहिं ।
सब समुद्र मोती नहीं, यौं साधू जग माहिं ॥१४॥
स्वाँगी सब संसार है, साधू समझ अपार ।
अललपच्छ कोइ एक है, पंछी कोटि हजार ॥१५॥
सिंह साध का एक मति, जीवत ही को खाय ।
भाव-हीन मिरतक दसा, ता के निकट न जाय ॥१६॥

---

(१) गरोह, भीड़ भाड़ ।

रवि को तेज घटै नहीं, जो घन जुड़ै घमंड।
साध वचन पलटै नहीं, (जो) पलटि जाय ब्रह्मंड ॥१७॥
साध कहावन कठिन है, ज्यों खाँड़े की धार।
डिगमिगाय तो गिरि पड़ै, निःचल उतरै पार ॥१८॥
साध कहावन कठिन है, ज्यों लम्बी पेड़ खजूर।
चढ़ै तो चाखै प्रेम रस, गिरै तो चकनाचूर ॥१९॥
जौन चाल संसार की, तौन साध की नाहिँ।
डिंभ चाल करनी करै, साध कहो मत ताहि ॥२०॥
गाँठी दाम न बाँधई, नहिँ नारी से नेह।
कह कबीर ता साध की, हम चरनन की खेह ॥२१॥
आवत साध न हरषिया, जात न दीया रोय।
कह कबीर वा दास की, मुक्ति कहाँ से होय ॥२२॥
छाजन भोजन प्रीति से, दीजै साध बुलाय।
जीवत जस है जक्त में, अंत परम पद पाय ॥२३॥
साध हमारी आत्मा, हम साधन के जीव।
साधन मद्धे योँ रहौं, ज्यों पय मद्धे घीव ॥२४॥
ज्यों पय मद्धे घीव है, त्यों रमिया सब ठौर।
वक्ता स्रोता बहु मिले, मथि काढ़ैं ते और ॥२५॥
साध नदी जल प्रेम रस, तहाँ प्रछालौ[1] अंग।
कह कबीर निरमल भया, साधू जन के संग ॥२६॥
वृच्छ कबहुँ नहिँ फल भखै, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने, साधन धरा सरीर ॥२७॥
साधू आवत देखि कर, हँसी हमारी देँह।
माथे का ग्रह उतरा, नैनों बँधा सनेह ॥२८॥

---

(१) धोओ।

साधु साधु सबही बड़े, अपनी अपनी ठौर ।
सबद बिबेकी पारखी, ते माथे के मौर ॥२९॥
साधु साधु सब एक हैं, जस पोस्ता का खेत ।
कोई बिबेकी लाल है, कोई सेत का सेत ॥३०॥
निराकार की आरसी, साधोंहीं की देहि ।
लखा जो चाहे अलख को, (तो) इनहीं मैं लखि लेहि ॥३१॥
कोई आवै भाव लै, कोइ अभाव लै आव ।
साध दोऊ को पोषते, भाव न गिनैं अभाव ॥३२॥
कबीर दरसन साध का, करत न कीजै कानि ।
(ज्यों) उद्यम से लछमी मिलै, आलस में नित हानि ॥३३॥
कबीर दरसन साध का, साहिब आवैं याद ।
लेखे मैं सोई घड़ी, बाकी के दिन बाद ॥३४॥
खाली साध न भैंटिये, सुन लीजे सब कोय ।
कहैं कबीरा भैंट धरु, जो तेरे घर होय ॥३५॥
मन मेरा पंछी भया, उड़ि कर चढ़ा अकास ।
गगन मँडल खालो पड़ा, साहिब संतों पास ॥३६॥
नहिं सीतल है चन्द्रमा, हिम नहिं सीतल होय ।
कबीर सीतल संत जन, नाम सनेही सोय ॥३७॥
रक्त छाड़ि पय को गहै, ज्यों रे गऊ का बच्छ ।
औगुन छाड़ै गुन गहै, ऐसा साधू लच्छ ॥३८॥
साधू आवत देखि कै, मन में करै मरोर ।
सो तो होसो चूहरा[1], बसै गाँव की छोर ॥३९॥
साधन के मैं संग हौं, अनत कहूँ नहिं जावँ ।
जो मोहिं अरपै प्रीति से, साधन मुख ह्वै खावँ ॥४०॥

---

(१) भंगी ।

साध मिले साहिब मिले, अंतर रही न रेख।
मनसा बाचा कर्मना, साधू साहिब एक ॥४१॥
सुख देवैं दुख को हरैं, दूर करैं अपराध।
कह कबीर वे कब मिलैं, परम सनेही साध ॥४२॥
जाति न पूछो साध की, पूछि लीजिये ज्ञान।
मोल करो तरवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥४३॥
साध मिलैं यह सब टलैं, काल जाल जम चोट।
सीस नवावत ढहि पड़ै, अघ पापन की पोट ॥४४॥
साध चलत रो दीजिये, कीजे अति सनमान।
कहै कबीर भैंट धरू, अपने बित अनुमान ॥४५॥
दरसन कीजै साध का, दिन में इक इक बार।
आसोजा[1] का मैंह ज्यों, बहुत करै उपकार ॥४६॥
कई बार नहिं करि सकै, तो दोय बखत करि लेय।
कबीर साधू दरस तें, काल दगा नहिं देय ॥४७॥
दोय बखत नहिं करि सकै, तो दिन में करु इक बार।
कबीर साधू दरस तें, उतरै भौजल पार ॥४८॥
एक दिना नहिं करि सकै, तो दूजे दिन करि लेहि।
कबीर साधू दरस तें, पावै उत्तम देहि ॥४९॥
दूजे दिन नहिं करि सकै, तीजे दिन करि जाय।
कबीर साधू दरस तें, मोच्छ मुक्ति फल पाय ॥५०॥
तीजे चौथे नहिं करै, तो बार बार[2] करि जाय।
या में बिलँब न कीजिये, कह कबीर समुझाय ॥५१॥
बार बार नहिं करि सकै, तो पाख पाख[3] करि लेय।
कह कबीर सो भक्त जन, जनम सुफल करि लेय ॥५२॥

---

(१) क्वार। (२) सातवें दिन, हफ्तेवार। (३) पंद्रहवे दिन।

पाख पाख नहिँ करि सकै, तो मास मास करि जाय।
या मैँ देर न लाइये, कह कबीर समुझाय ॥५३॥

मास मास नहिँ कर सकै, तो छठे मास अलबत्त।
या मैँ ढील न कीजिये, कह कबीर अविगत्त ॥५४॥

छठे मास नहिँ करि सकै, बरस दिना करि लेय।
कह कबीर सो भक्त जन, जमहिँ चुनौती देय[1] ॥५५॥

बरस बरस नहिँ करि सकै, ता को लागै दोष।
कहै कबीरा जीव सो, कबहुँ न पावै मोष ॥५६॥

संत न छोड़ैँ संतई, कोटिक मिलैँ असंत।
मलय भुवंगम बेधिया, सीतलता न तजंत ॥५७॥

साधू जन सब मेँ रमैँ, दुक्ख न काहू देहिँ।
अपने मनि गाढ़े रहैँ, साधुन का मति येहि ॥५८॥

साधू ऐसा चाहिये, दुखै दुखावै नाहिँ।
पान फूल छेड़ै नहीँ, बसै बगीचा माहिँ ॥५९॥

साधू भँवरा जग कली, निसि दिन रहै उदास।
पल इक तहाँ बिलम्बही, सीतल सबद निवास ॥६०॥

साध हजारी कापड़ा, ता मेँ मल न समाय।
साकट काली कामरी, भावै तहाँ बिछाय ॥६१॥

साकट बाम्हन मत मिलै, साध मिलौ चंडाल।
जाहि मिले सुख ऊपजै, मानो मिले दयाल ॥६२॥

कमल पत्र हैँ साधु जन, बसैँ जगत के माहिँ।
बालक केरी धाय ज्योँ, अपना जानत नाहिँ ॥६३[2]

(१) जम को धिरावै। (२) जैसे कँवल का पत्ता पानी के बढ़ने पर भी उसमें डूब नहीं जाता और जैसे धाय दूसरे के बच्चे को दूध पिलाती है तो उसके साथ पुत्र के समान ममता नहीं हो जाती ऐसे ही साध जन का जगत से व्यवहार रहता है।

साध सिद्ध बड़ अंतरा, जैसे आम बबूल।
वा की डारी अमी फल, या की डारी सूल ॥६४॥
साधू सोई जानिये, चलै साधु की चाल।
परमारथ राता रहै, बोलै बचन रसाल ॥६५॥
हरि दरिया सूभर भरा, साधोँ का घट सीप।
ता में मोती नीपजै, चढ़ै देसावर दीप ॥६६॥
साधू ऐसा चाहिये, जा के ज्ञान बिबेक।
बाहर मिलते से मिलै, अंतर सब से एक ॥६७॥
अगम पंथ को मन गया, सुरत भई अगुवान।
तहाँ कबीरा मँड़ि रहा, बेहद के मैदान ॥६८॥
बहता पानी निर्मला, बँधा गँधीला होय।
साधू जन रमते भले, दाग न लागै कोय ॥६९॥
बँधा भी पानी निर्मला, जो टुक गहिरा होय।
साधू जन बैठा भला, जो कछु साधन सोय ॥७०॥
कौन साधु का खेल है, कौन सुरत का दाव।
कौन अमी का कूप है, कौन बज्र का घाव ॥७१॥
छिमा साधु का खेल है, सुमति सुरत का दाव।
सतगुरु अमृत कूप हैं, सब्द बज्र का घाव ॥७२॥
साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिँ।
धन का भूखा जो फिरै, सो तो साधू नाहिँ ॥७३॥
कबीर सोई दिन भला, जा दिन संत मिलाय।
अंक भरे भरि भेटिये, पाप सरीरा जाय ॥७४॥
भली भई जो भय मिटा, टूटी कुल की लाज।
बेपरवाही ह्वै रहा, बैठा नाम जहाज ॥७५॥
साधु समुंदर जानिये, याहीं रतन भराय।
मंद भाग मूठी भरै, कर कंकर चढ़ि जाय ॥७६॥

परमेसुर तेँ संत बड़, ता का कहा उनमान।
हरि माया आगे धरे, संत रहैँ निर्बान ॥७७॥
संत मिला जनि बीछुरो, बिछुरै यह मम प्रान।
नाम-सनेही ना मिलै, तो प्रान देहि मत आन ॥७८॥
कबीर कुल सोई भला, जा कुल उपजै दास।
जेहि कुल दास न ऊपजै, सो कुल आक पलास ॥७९॥
चंदन की कुटकी[1] भली, नहिँ बबूल लखराँव।
साधन की झुपड़ी भली, ना साकट को गाँव ॥८०॥
हैवर गैवर[2] सुघर घर, छत्रपती की नारि।
तासु पटतरे ना तुलै, हरिजन को पनिहारि ॥८१॥
साधन की कुतिया भली, बुरी सकट की माय।
वह बैठी हरि जस सुनैं, वह निन्दा करने जाय ॥८२॥
हरि दरबारी साध हैं, इन सम और न होय।
बेगि मिलावैं नाम से, इन्हैं मिलै जो कोय ॥८३॥
साधन केरी दया से, उपजै बहुत अनंद।
कोटि बिघन पल मेँ टरै, मिटै सकल दुख द्वंद ॥८४॥
धन्य सो माता सुंदरी, जिन जाया साधू पूत।
नाम सुमिरि निर्भय भया, अरु सब गया अबूत[3] ॥८५॥
बेद थके ब्रह्मा थके, थाके सेस महेस।
गीताहू की गम नहीँ, तहँ संत किया परबेस ॥८६॥
तीरथ जाये एक फल, साध मिले फल चारि[4]।
सतगुरु मिले अनेक फल, कहै कबीर बिचारि ॥८७॥
साधु सीप साहिब समुँद, निपजत[5] मोती माहिँ[6]।
बस्तु ठिकाने पाइये, नाल खाल[7] मेँ नाहिँ ॥८८॥

(१) टुकड़ा। (२) अनगिनत घोड़े हाथी। (३) वृथा। (४) अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष। (५) पैदा होती हैं। (६) अंतर में। (७) नाला और गड्ढा।

साधू खोजा[1] राम के, धँसैं जो महलन माहिँ ।
औरन को परदा लगै, इन को परदा नाहिँ ॥८९॥

हरि ऐसी हरिजन बड़े, समझि देखु मन माहिँ ।
कह कबीर जग हरि विखे[2], सो हरि हरिजन माहिँ ॥९०॥

साध बड़े संसार में, हरि तें अधिका सोय ।
बिन इच्छा पूरन करैं, साहिब हरि नहिँ होय ॥९१॥

साधू आवत देखि के, चरनन लागूँ धाय ।
ना जानूँ यहि भेष में, हरि ही जो मिलि जाय ॥९२॥

कबीर दरसन साधु के, बड़ भागे दरसाय ।
जो होवे सूली सजा[3], काँटेई टरि जाय ॥९३॥

साध बृच्छ सत नाम फल, सीतल सबद बिचार ।
जग में होते साध नहिँ, जरि मरता संसार ॥९४॥

साध सेव जा घर नहीं, सतगुरु पूजा नाहिँ ।
सो घर मरघट सारिखा[4], भूत बसै ता माहिँ ॥९५॥

निराकार निज रूप है, प्रेम प्रीति से सेव ।
जो चाहे आकार तूँ, साधू परतछ देव ॥९६॥

जा सुख को मुनिवर रटैं, सुर नर करैं बिलाप ।
सो सुख सहजै पाइये, संतन सेवत आप ॥९७॥

कोटि कोटि तीरथ करै, कोटि कोटि करि धाम ।
जब लगि संत न सेवई, तब लगि सरै न काम ॥९८॥

आसा बासा संत का, ब्रह्मा लखै न बेद ।
षट दरसन[5] खटपट करै, बिरला पावै भेद ॥९९॥

---

(१) हिजड़े जो बादशाही महल में काम करते थे और बड़ी क़द्र से रक्खे जाते थे। (२) में। (३) दंड। (४) सरीखा, समान। (५) छवो शास्त्र।

भेष का अंग

तत्व तिलक तिहूं लोक में, सत्त नाम निज सार।
जन कबीर मस्तक दिया, सोभा अमित अपार ॥१॥
तत्व तिलक की खानि है, महिमा है निज नाम।
अछै नाम वा तिलक को, रहै अछय बिस्राम ॥२॥
तत्व तिलक माथे दिया, सुरति सरवनी कान।
करनी कंठी कंठ में, परसा पद निर्बान ॥३॥
मन माला तन मेखला, भय को करै भभूत।
अलख मिला सब देखता, सो जोगी अवधूत ॥४॥
तन को जोगी सब करै, मन को बिरला कोय।
सहजै सब सिधि पाइये, जो मन जोगी होय ॥५॥
हम तो जोगी मनहिं के, तन के हैं ते और।
मन को जोग लगावते, दसा भई कछु और ॥६॥
भर्म न भागा जीव का, बहुतक धरिया भेख।
सतगुरु मिलिया बाहिरे, अंतर रहि गइ रेख ॥७॥

बेहद का अंग।

बेहद अगाधी पीव है, ये सब हद के जीव।
जे नर राते हद्द से, कधो न पावैं पीव ॥१॥
हद में पीव न पाइये, बेहद में भरपूर।
हद बेहद की गम लखै, ता से पीव हजूर ॥२॥
हद्द बँधा बेहद रमै, पल पल देखै नूर।
मनुवाँ तहँ लै राखिया, (जहँ) बाजै अनहद तूर ॥३॥
हद्द छाड़ि बेहद गया, सुन्न किया अस्थान।
मुनि जन जान न पावहीं, तहाँ लिया बिसराम ॥४॥

हद्द छाड़ि बेहद गया, रहा निरन्तर होय।
बेहद के मैदान में, रहा कबीरा सोय ॥५॥
हद में बैठा कथत है, बेहद की गम नाहिं।
बेहद की गम होयगी, तब कछु कथना काहिं ॥६॥
हद में रहै सो मानवी, बेहद रहै सो साध।
हद बेहद दोऊ तजै, तिन का मता अगाध ॥७॥
हद बेहद दोऊ तजी, अबरन किया मिलान।
कह कबीर ता दास पर, वारौं सकल जहान ॥८॥
जहाँ सोक व्यापै नहीं, चल हँसा वा देस।
कह कबीर गुरुगम गहौ, छाड़ि सकल भ्रम भेस ॥९॥

असाधु का अंग।

कबीर भेष अतीत का, करै अधिक अपराध।
बाहर देखे साध गति, माहीं बड़ा असाध ॥१॥
जेता मीठा बोलवा, तेता साधु न जान।
पहिले थाह दिखाइ करि, औंड़े[1] देसी आन ॥२॥
उज्जल देखि न धीजिये, बग ज्यों माँड़े ध्यान।
धूरे[2] बैठि चपेटही, यों लै बूड़े ज्ञान ॥३॥
चाल बकुल की चलत है, बहुरि कहावै हंस।
ते मुक्ता कैसे चुगै, परै काल के फंस ॥४॥
साधू भया तो क्या हुआ, माला पहिरी चार।
बाहर भेष बनाइया, भीतर भरी भँगार ॥५॥
माला तिलक लगाइ के, भक्ति न आई हाथ।
दाढ़ी मूँछ मुड़ाइ के, चले दुनी[3] के साथ ॥६॥

---

(१) गहिरे। (२) एक तरह की मोटी घास। (३) [illegible]

दाढ़ी मूँछ मुड़ाइ के, हूआ घोटम घोट।
मन को क्यौं नहिं मूड़िये, जा में भरिया खोट ॥७॥
मूँड़ मुड़ाये हरि मिलैं, सब कोइ लेहि मुँड़ाय।
बार बार के मूँड़ने, भेड़ बैकुंठ न जाय ॥८॥
केसन[1] कहा बिगारिया, जो मूँड़ौ सौ बार।
मन को क्यौं नहिं मूड़िये, जा में बिषय बिकार ॥९॥
मन मेवासो मूँड़िये, केसहिं मूँड़े काहिं।
जो कछु किया सो मन किया, केस किया कछु नाहिं ॥१०॥
देखा देखी भक्ति का, कबहुँ न चढ़सी रंग।
बिपति पड़े पर छाड़सी, ज्यौं कैंचुरी भुजंग ॥११॥
ज्ञान सँपूरन ना बिधा, हिरदा नाहिं छिदाय।
देखा देखी पकरिया, रंग नहीं ठहराय ॥१२॥
बाँबी कूटैं बावरे, साँप न मारा जाय।
मूरख बाँबी ना डसै, सर्प सबन को खाय ॥१३॥
आप साधु करि देखिये, देखु असाधु न कोय।
जा के हिरदे गुरु नहीं, हानि उसी की होय ॥१४॥
खलक मिला खाली रहा, बहुत किया बकवाद।
बाँझ झुलावै पालना, ता में कौन सवाद १५॥
जो बिभूति साधुन तजी, तेहि बिभूति लपटाय।
जौन बवन करि डारिया, स्वान स्वादि करि खाय[2] ॥१६॥
स्वाँग पहिरि सोहदा भया, दुनिया खाई खूँदि।
जा सेरी[3] साधू गया, सो तो राखो मूँदि ॥१७॥
भूला भसम रमाइ के, मिटी न मन की चाहि।
जौ सिक्का नहिं साच का, तौ लगि जोगी नाहिं ॥१८॥

---

(१) बाल। (२) जिस माया को सच्चे साधु ने त्याग किया उसमें असाधु लपटता है जैसे कुत्ता कै की हुई चीज़ को मज़े के साथ खाता है। (३) रास्ता।

बाना पहिरे सिंह का, चलै भेड़ की चाल।
बोली बोलै स्यार की, कुत्ता खाया फाल[1] ॥१९॥
कबीर वह तो एक है, परदा दीया भेख।
करम भरम सब दूरि करि, सबही माहिँ अलेख ॥२०॥
पहिले बूड़ी पिरथवी, झूठे कुल की लार।
अलख बिसारयो भेष मैं, बूड़े काली धार ॥२१॥
चतुराई हरि ना मिलै, ये बातोँ की बात।
निस्प्रेही निरधार[2] का, गाहक दीनानाथ ॥२२॥
जप माला छापा तिलक, सरै न एकौ काम।
मन काचे राचे वृथा, साचे राचे राम ॥२३॥
साकट का मुख बिम्ब[3] है, निकसत बचन भुवंग।
ता की औषधि मौन है, बिष नहिँ व्यापै अंग ॥२४॥
साकट कहा न कहि चलै, स्वान कहा नहिँ खाय।
जो कौआ मठ हगि भरै, तो मठ को कहा नसाय ॥२५॥
साकट संग न बैठिये, अपनो अंग लगाय।
तत्व सरीरा झरि परै, पाप रहै लपटाय ॥२६॥
हम जाना तुम मगन हो, रहे प्रेम रस पागि।
रंचक पवन के लागते, उठे नाग से जागि ॥२७॥
बात बनाई जग ठगा, मन परमोधा नाहि।
कबीर स्वारथ ले गया, लख चौरासी माहिँ ॥२८॥
सोवत साधु जगाइये, करै नाम का जाप।
ये तीनोँ सोवत भले, साकट सिंह रु साँप ॥२९॥
आँखो देखा घो भला, मुख मेला नहिँ तेल।
साधू से झगड़ा भला, ना साकट से मेल ॥३०॥

---

(१) फाड़। (२) संसार की ओर से बेपरवाह और निरास। (३) बाँबी।

घर में साकट इस्तरी, आप कहावै दास।
वो तो ह्वैगी सूकरी, वह रखवाला पास ॥३१॥
साकट नारी छोड़िये, गनिका कीजै नारि।
दासी ह्वै हरिजनन की, कुल नहिं आवै गारि ॥३२॥

गृहस्थ की रहनी का अंग।

जो मानुष गृहधर्म युत, राखै सील बिचार।
गुरुमुख बानी साधु सँग, मन बच सेवा सार ॥१॥
सेवक भाव सदा रहै, बहम[1] न आनै चित्त।
निरनै लखै जथार्थ विधि, साधुन को करै मित्त ॥२॥
सत्त सील दाया सहित, बरतै जग ब्यौहार।
गुरु साधू का आस्रित, दीन बचन उच्चार ॥३॥
बहु संग्रह बिषयान को, चित्त न आवै ताहि।
मधुकर इव[2] सब जगत जिव, घटि बढ़ि लखि बरताहि ॥४॥
गिरही सेवै साधु को, साधू सुमिरै नाम।
या मैं धोखा कछु नहीं, सरै दोऊ को काम ॥५॥

बैरागी की रहनी का अंग।

सिख[3] साखा संसार गति, सेवक परतछ काल।
बैरागी छावै मढ़ी, ता को मूल न डाल ॥१॥
पास न जाके कापड़ा, कधी सुरंग न होय।
कबीर त्यागै ज्ञान करि, कनक कामनी दोय ॥२॥
घर मैं रहु तौ भक्ति करु, नातर करु बैराग।
बैरागी बंधन करै, ता का बड़ा अभाग ॥३॥

(१) भ्रम। (२) सदृश। (३) शिष्य।

धारन तो दोऊ भली, गिरही के बैराग।
गिरही दासातन करै, बैरागी अनुराग ॥४॥
बैरागी बिरकत भला, ग्रेही चित्त उदार।
दोउ बातौं खाला पड़ै, ता को वार न पार ॥५॥

अष्ट दोष वा बिकारी अंग।

१-काम का अंग

कामी का गुरु कामिनी, लोभी का गुरु दाम।
कबीर का गुरु संत है, संतन का गुरु नाम ॥१॥
सहकामी दीपक दसा, सोखै तेल निवास।
कबीर हीरा संत जन, सहजै सदा प्रकास ॥२॥
कामी कुत्ता तीस दिन, अंतर होय उदास।
कामी नर कुत्ता सदा, छः ऋतु बारह मास ॥३॥
कामी क्रोधी लालची, इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करै कोइ सूरमा, जाति बरन कुल खोय ॥४॥
भक्ति बिगारी कामियाँ, इन्द्री केरे स्वाद।
हीरा खोया हाथ से, जन्म गँवाया बाद ॥५॥
कामी लज्जा ना करै, मन माहीं अहलाद।
नींद न माँगै साथरा[1], भूख न माँगै स्वाद ॥६॥
कामी कबहुँ न गुरु भजै, मिटै न संसय सूल।
और गुनन सब बकसहौं, कामी डार न मूल ॥७॥
काम क्रोध सूतक सदा, सूतक लोभ समाय।
सील सरोवर न्हाइये, तब यह सूतक जाय ॥८॥

---

(१) बिछौना।

जहाँ काम तहँ नाम नहिँ, जहाँ नाम नहिँ काम।
दोनोँ कबहूँ ना मिलैँ, रबि रजनी इक ठाम ॥९॥
नारि पुरुष सबही सुनो, यह सतगुरु की साखि।
बिष फल फले अनेक हैँ, मत कोइ देखो चाखि ॥१०॥
जिन खाया सोई मुआ, गन गँधर्व बड़ भूप।
सतगुरु कहैँ कबीर से, जग मैँ जुगति अनूप ॥११॥
कामी तो निर्भय भया, करै न काहू संक।
इंद्री केरे बस परा, भुगतै नरक निसंक ॥१२॥
कबीर कामी पुरुष का, संसय कबहुँ न जाय।
साहिब से अलगा रहै, वा के हिरदे लाय[1] ॥१३॥
कामी अमी न भावई, बिष को लेवै सोधि।
कुबुधि न भाजै जीव की, भावै ज्यौँ परमोधि ॥१४॥
कहता हूँ कहि जात हूँ, समभै नहीँ गँवार।
बैरागी गिरही कहा, कामी वार न पार ॥१५॥
कामी कर्म की कँचली, पहिरि हुआ नर नाग।
सिर फोरै सूभै नहीँ, कोइ पूरबला भाग ॥१६॥
काम कहर असवार है, सब को मारै धाय।
कोइक हरिजन ऊबरा, जा के नाम सहाय ॥१७॥
केता बहता बहि गया, केता बहि बहि जाय।
ऐसा भेद बिचारि कै, तू मति गोता खाय ॥१८॥
काम क्रोध मद लोभ की, जब लगि घट मैँ खान।
कहा मूरख कहा पंडिता, दोनोँ एक समान ॥१९॥
काम काम सब कोइ कहै, काम न चीन्है कोय।
जेती मन की कलपना, काम कहावै सोय ॥२०॥

---

(१) आग।

२-क्रोध का अंग

यह जग कोठी काठ की, चहुँ दिसि लागी आग।
भीतर रहे सो जल मुए, साधू उबरे भाग ॥१॥
क्रोध अगिन घर घर बढ़ी, जरै सकल संसार।
दीन लीन निज भक्त जो, तिन के निकट उबार ॥२॥
कोटि करम लागे रहैं, एक क्रोध की लार।
किया कराया सब गया, जब आया हंकार ॥३॥
जक्त माहिँ धोखा घना, अहं क्रोध औ काल।
पार पहूँचा मारिये, ऐसा जम का जाल ॥४॥
दसो दिसा से क्रोध की, उठी अपरबल आगि।
सीतल संगति साध की, तहाँ उबरिये भागि ॥५॥
गारि अँगारा क्रोध झल, निंदा धूआँ होय।
इन तीनोँ को परिहरै, साध कहावै सोय ॥६॥
कुबुधि कमानी चढ़ि रही, कुटिल बचन का तीर।
भरि भरि मारै कान मेँ, सालै सकल सरीर ॥७॥
कुटिल बचन सब से बुरा, जारि करै तन छार।
साध बचन जल रूप है, बरसै अमृत धार ॥८॥
निन्दक तेँ कूकर भला, हठ करि माड़ै रारि[1]।
कूकर तेँ क्रोधी बुरा, गुरुहिँ दिवावै गारि[2] ॥९॥

३-लोभ का अंग

जब मन लागा लोभ से, गया बिषय मेँ मोय।
कहै कबीर बिचारि कै, कस भक्ती धन होय ॥१॥

---

(१) झगड़ा। (२) गाली।

कबीर त्रिस्ना पापिनी, ता से प्रीति न जोरि।
पैंड पैंड पाछे परै, लागै मोटी खोरि ॥२॥

त्रिसना सींचो ना बुझै, दिन दिन बढ़ती जाय।
जवासा का रूख ज्यौं, घन मेहा कुम्हिलाय ॥३॥

कबीर औंधी खोपरी, कबहूँ धापै नाहिँ।
तीन लोक की संपदा, कब आवै घर माहिँ ॥४॥

आब गई आदर गया, नैनन गया सनेह।
ये तीनौं जबही गये, जबहिँ कहा कछु देह ॥५॥

सूम थैली अरु स्वान भग, दोनौं एक समान।
घालत में सुख ऊपजै, काढ़त निकसै प्रान ॥६॥

जग में भक्त कहावई, चुकट[1] चून नहिँ देय।
सिष जोरू का ह्वै रहा, नाम गुरू का लेय ॥७॥

बहुत जतन करि कीजिये, सब फल जाय नसाय।
कबीर संचय सूम धन, अंत चोर लै जाय ॥८॥

पूत पियारे पिता के, सँग रे लागा धाय।
लोभ मिठाई हाथ लै, आपन गया भुलाय ॥९॥

४-मोह का अंग

मोह फंद सब फांदिया, कोइ न सकै निरवार।
कोइ साधू जन पारखी, बिरला तत्त्व बिचार ॥१॥

प्रथम फँदे सब देवता, (सुख) बिलसैं स्वर्ग निवास।
मोह मगन सुख पाइया, मृत्युलोक की आस ॥२॥

दूजे ऋषि मुनिवर फँदे, ता से रुचि उपजाय।
स्वर्गलोक सुख मानहीं, (फिरि) धरनि परत हैं आय ॥३॥

---

(१) चुटकी भर भी।

मोह मगन संसार है, कन्या रही कुमारि।
काहू सुरति जो ना करी, फिरि फिरि ले अवतार ॥४॥
कुरुच्छेत्र सब मेदनी, खेती करै किसान।
मोह मिरग सब चरि गया, आस न रहि खलिहान ॥५॥
काहू जुगति न जानिया, केहि बिधि बचै सु खेत।
नहिँ बँदगी नहिँ दीनता, नहिँ साधू सँग हेत ॥६॥
जब घट मोह समाइया, सबै भया अँधियार।
निर्मोह ज्ञान बिचारि कै, कोइ साधू उतरै पार ॥७॥
जहँ लगि सब संसार है, मिरग सबन को मोह।
सुर नर नाग पताल अरु, ऋषि मुनिवर सब जोह ॥८॥
अष्ट सिद्धि नौ निद्धि लौं, तुम से रहै निनार[1]।
मिरगहिँ बाँधि बिडारहू, कहै कबीर बिचार ॥९॥
सलिल मोह की धार में, बहि गये गहिर गँभीर।
सुच्छम मछरी सुरत है, चढ़िहै उलटे नीर ॥१०॥

५-मान और हँगता का अंग

कंचन तजना सहज है, सहज त्रिया का नेह।
मान बड़ाई ईरषा, दुरलभ तजनो येह ॥१॥
माया तजी तो क्या भया, मान तजा नहिँ जाय।
मान बड़े मुनिवर गले, मान सबन को खाय ॥२॥
काला मुँह कर मान का, आदर लावो आगि।
मान बड़ाई छाड़ि के, रहो नाम लौ लागि ॥३॥
मान बड़ाई कूकरी, धरमराय दरबार।
दीन लकुटिया बाहरा, सब जग खाया फाड़ ॥४॥

---

(१) न्यारा।

मान बड़ाई कूकरी, संतन खेदी जानि।
पांडव जग पूरन भया, सुपच बिराजे आनि ॥५॥
मान बड़ाई जगत में, कूकर की पहिचान।
मीत किये मुख चाटही, बैर किये तन हानि ॥६॥
मान बड़ाई ऊरमी, यह जग का ब्योहार।
दीन गरीबी बंदगी, सतगुरु का उपकार ॥७॥
बड़ी बड़ाई ऊँट की, लादे जहँ लगि साँस।
मुहकम सलिता[1] लादि के, ऊपर चढ़ै फरास ॥८॥
हरिजन को ऊँचा नवै[2], ऊँट जनम का होय।
तीन जगह टेढ़ा भया, ऊँचा ताकै सोय ॥९॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं, फल लागै अति दूर ॥१०॥
कबीर अपने जीव तें, ये दो बातें धोय।
मान बड़ाई कारने, आछत मूल न खोय ॥११॥
भक्त रु भगवँत एक है, बूझत नहीं अजान।
सीस नवावत संत को, बड़ा करै अभिमान ॥१२॥
प्रभुता को सब कोउ भजै, प्रभु को भजै न कोय।
कह कबीर प्रभु को भजै, प्रभुता चेरी होय ॥१३॥
जहँ आपा तहँ आपदा, जहँ संसय तहँ सोग।
कह कबीर कैसे मिटै, चारो दीरघ रोग ॥१४॥
अहं अगिन हिरदे जरै, गुरु से चाहै मान।
तिन को जम न्यौता दिया, हो हमरे मिहमान ॥१५॥
ऊँचा कुल नीचा मता, नाहिँ गुरू से हेत।
हीन गिनै हरि भक्त को, खासो खता अनेक ॥१६॥

---

(१) मज़बूत टाट के थैले। (२) सिर ऊँचा करके नमस्कार करै।

ऊँचे कुल के कारने, भूला सब संसार।
तब कुल की क्या लाज है, यह तन होवै छार ॥१७॥
हस्ती चढ़ि के जो फिरै, ऊपर चँवर ढुराय।
लोग कहैं सुख भोगवै, सीधे दोजख जाय ॥१८॥
जौन मिला सो गुरु मिला, चेला मिला न कोय।
चेला को चेला मिलै, तब कछु होय तो होय ॥१९॥
बड़ा बड़ाई ना तजै, छोटा बहु इतराय।
ज्यौं प्यादा फरजी भया, टेढ़ा टेढ़ा जाय[1] ॥२०॥
जग में बैरी कोउ नहीं, जो मन सीतल होय।
यह आपा तू डारि दे, दया करै सब कोय ॥२१॥

६—कपट का अंग।

कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ कपट का हेत।
जानो कली अनार की, तन राता[2] मन सेत[3] ॥१॥
कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ न चोखा चित्त।
परपूटा अवगुन घना, मुहँड़े ऊपर मित्त[4] ॥२॥
चित कपटी सब से मिलै, माहीं कुटिल कठोर।
इक दुर्जन इक आरसी, आगे पीछे और ॥३॥
हेत प्रीति से जो मिलै, ता को मिलिये धाय।
अंतर राखे जो मिलै, ता से मिलै बलाय ॥४॥
नवनि नवा तो क्या हुआ, सूधा चित्त न ताहि।
पारधिया[5] दूना नवै, मिरगहिँ टूकै जाहि ॥५॥

---

(१) शतरंज के खेल में जब प्यादा वजीर बन जाता है तो वह टेढ़ा चल सकता है। (२) लाल; रंगीन। (३) सफेद। (४) पीठ पीछे बुराई करै और मुँह पर बड़ाई। (५) शिकारी।

७-आशा का अंग।

आसा जीवै जग मरै, लोक मरै मन जाहि।
धन संचै सो भी मरै, उबरै सो धन खाहि ॥१॥
आसा बेली कर्म बन, बाढ़त मन के साथ।
त्रिस्ना फूल चौगान में, फल करता के हाथ ॥२॥
जो तू चाहै मुज्झ को, राखो और न आस।
मुझहि सरीखा ह्वै रहो, सब सुख तेरे पास ॥३॥
आसा मनसा दुइ नदी, तहाँ न पग ठहराय।
इन दोनों को लाँघि कै, चौड़े बैठो जाय ॥४॥
चौड़ा बैठा जाइ कै, नाम धरा रनजीत।
साहिब न्यारा देखिया, अंतरगत की प्रीत ॥५॥
आस बास[1] जग फंदिया, रहा अरध लपटाय।
नाम आस पूरन करै, सकल आस मिटि जाय ॥६॥
आसन मारे क्या भया, मुई न मन की आस।
ज्यौं तेली के बैल को, घर ही कोस पचास ॥७॥
कबीर जग को कहा कहूँ, भवजल बूड़े दास।
सतगुरु सम पति छोड़ि के, करै मनुष की आस ॥८॥
आसा एक जो नाम की, दूजी आस निरास।
पानी माहीं घर करै, सो भी मरै पियास ॥९॥
आसा एक जो नाम की, दूजी आस निवारि।
दूजी आसा मारसी, ज्यौं चौपड़ की सार ॥१०॥
कबीर जोगी जगत-गुरु, तजै जगत की आस।
जो जग की आसा करै, तो जगत गुरू वह दास ॥११॥

---

(१) बासना।

बहुत पसारा जनि करै, कर थोरे की आस।
बहुत पसारा जिन किया, तेई गये निरास ॥१२॥
आसा का ईंधन करूँ, मनसा करूँ भभूत।
जोगी फिरि फेरी करूँ, यों बनि आवै सूत ॥१३॥

८-तृष्णा का अंग

कबीर सो धन संचिये, जो आगे को होय।
सीस चढ़ाये गाठरी, जात न देखा कोय ॥१॥
त्रिस्ना केरि विसेषता, कहँ लगि करौं बखान।
देँह मरै इंद्री मरै, त्रिस्ना मरि न निदान ॥२॥
की त्रिस्ना है डाकिनी, की जीवन का काल।
और और निसि दिन चहै, जोवन करै बिहाल ॥३॥
त्रिस्ना अग्नि प्रलय किया, तृप्त न कबहूँ होय।
सुर नर मुनि औ रंक सब, भस्म करत है सोय ॥४॥
नामहिं छोटा जानि कै, दुनिया आगे दीन।
जीवन को राजा कहै, त्रिस्ना के आधीन ॥५॥

नव रत्न वा सकारी अंग।

१-शील का अंग

सील छिमा जब ऊपजै, अलख दृष्टि तब होय।
बिना सील पहुँचै नहीं, लाख कथै जो कोय ॥१॥
सीलवंत सब तें बड़ा, सर्व रतन की खानि।
तीन लोक की संपदा, रही सील में आनि ॥२॥
ज्ञानी ध्यानी संजमी, दाता सूर अनेक।
जपिया तपिया बहुत हैं, सीलवंत कोइ एक ॥३॥

सुख का सागर सील है, कोइ न पावै थाह।
सबद बिना साधू नहीं, द्रव्य बिना नहिं साह ॥४॥
बिषय पियारे प्रीति से, तब लगि गुरुमुख नाहिँ।
जब अंतर सतगुरु बसैं, बिषया से रुचि नाहिँ ॥५॥
सील गहै कोइ सावधान, चेतन पहरे जागि।
बासन बासन के खिसे, चोर न सकई लागि ॥६॥
आव कहै सो औलिया, बैठु कहै सो पीर।
जा घर आव न बैठु है, सो काफिर बेपीर ॥७॥
घायल ऊपर घाव लै, टोटे त्यागी सोय।
भर जोबन में सीलवँत, बिरला होय तो होय ॥८॥

२-क्षमा का अंग

छिमा क्रोध को छय करै, जो काहू पै होय।
कह कबीर ता दास को, गंजि न सक्कै कोय ॥१॥
छिमा बड़न को चाहिये, छोटन को उतपात।
कहा बिस्नु को घटि गयो, जो भृगु मारी लात ॥२॥
भली भली सब कोउ कहै, रही छिमा ठहराय।
कह कबीर सीतल भया, गई जो अग्नि बुझाय ॥३॥
जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लोभ तहँ पाप।
जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ छिमा तहँ आप ॥४॥
गारी से सब ऊपजै, कलह कष्ट अरु मीच।
हार चलै सो संत है, लागि मरै सो नीच ॥५॥
करगस[1] सम दुर्जन बचन, रहै संत जन टारि।
बिजुली परै समुद्र में, कहा सकैगी जारि ॥६॥

---

(१) तीर।

चोट सुहेली सेल की, पड़ते लेय उसास।
चोट सहारै सबद की, तासु गुरू मैं दास ॥७॥
खोद खाद धरती सहै, काट कूट बनराय।
कुटिल बचन साधू सहै, और से सहा न जाय ॥८॥

३–संतोष का अंग

साध सँतोषी सर्बदा, निरमल जा के बैन।
ता के दरसन परस तैं, जिय उपजै सुख चैन ॥१॥
चाह गई चिंता मिटी, मनुवाँ बेपरवाह।
जिन को कछू न चाहिये, सोई साहंसाह ॥२॥
माँगन गये सो मरि रहे, मरे सो माँगन जाहिँ।
तिन से पहिले वे मरे, जो होत करत हैं नाहिँ ॥३॥
अनमाँगा तो अति भला, माँगि लिया नहिँ दोष।
उद्र समाना माँगि ले, निस्चय पावै मोष ॥४॥
उत्तम भषि है अजगरी, सुनि लीजै निज बैन।
कह कबीर ता के गहे, महा परम सुख चैन ॥५॥
गोधन गजधन बाजधन, और रतन धन खान।
जब आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान ॥६॥
मरि जाऊँ माँगूँ नहीं, अपने तन के काज।
परमारथ के कारने, मोहिँ न आवै लाज ॥७॥

४–धीरज का अंग

धीरा होइ धमक[1] सहै, ज्यौं अहरन सिर घाव।
मेघा पर्वत ह्वै रहै, इत उत कहूँ न जाव ॥१॥

(१) चोट।

धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कछु होय।
माली सींचै सौ घड़ा, ऋतु आये फल होय ॥२॥
कबीर धीरज के धरे, हाथी मन भर खाय।
टूक एक के कारने, स्वान घरै घर जाय ॥३॥
कबीर तूँ काहे डरै, सिर पर सिरजनहार।
हस्ती चढ़ि कर डोलिये, कूकर भुसै हजार ॥४॥
कबीर भँवर में बैठि कै, भौचक मना न जोय।
डूबन का भय छाड़ि दे, करता करै सु होय ॥५॥
मैं मेरी सब जायगी, तब आवैगी और।
जब यह निःचल होयगा, तब पावैगा ठौर ॥६॥

५-दीनता का अंग

दीन गरीबी बंदगी, साधन से आधीन।
ता के सँग मैं यों रहूँ, ज्यों पानी सँग मीन ॥१॥
दीन लखै मुख सबन को, दीनहिं लखै न कोय।
भली बिचारी दीनता, नरहुँ देवता होय ॥२॥
इक बानी जो दीनता, संतन कियो बिचार।
यही भेंट गुरुदेव की, सब कछु गुरु दरबार ॥३॥
दीन गरीबी बंदगी, सब से आदर भाव।
कह कबीर तेई बड़ा, जा में बड़ा सुभाव ॥४॥
नहीं दीन नहिं दीनता, संत नहीं मिहमान।
ता घर जम डेरा किया, जीवत भया मसान ॥५॥
कबीर नवै सो आप को, पर को नवै न कोय।
घालि तराजू तौलिये, नवै सो भारी होय ॥६॥

आपा मेटे पिउ मिलै, पिउ मैं रहा समाय।
अकथ कहानी प्रेम की, कहै तो को पतियाय ॥७॥
ऊँचे पानी ना टिकै, नीचे ही ठहराय।
नीचा होय सो भर पिवै, ऊँचा प्यासा जाय ॥८॥
नीचे नीचे सब तरे, जेते बहुत अधीन।
चढ़ि बोहित[1] अभिमान की, बूड़े ऊँच कुलीन ॥९॥
सब तें लघुताई भली, लघुता तें सब होय।
जस दुतिया को चन्द्रमा, सीस नवै सब कोय ॥१०॥
बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजैं आपना, मुझसा बुरा न होय ॥११॥
कबीर सब तैं हम बुरे, हम तैं भल सब कोय।
जिन ऐसा करि बूझिया, मित्र हमारा सोय ॥१२॥

६–दया का अंग

दाय भाव हिरदे नहीं, ज्ञान कथै बेहद्द।
ते नर नरकहिं जाहिंगे, सुनि सुनि साखी सब्द ॥१॥
दाया दिल मैं राखिये, तू क्यों निरदै होय।
साईं के सब जीव हैं, कीड़ी कुंजर सोय ॥२॥
हम रोवैं संसार को, रोय न हम को कोय।
हम को तो सो रोइहै, जो सबद-सनेही होय ॥३॥
वैरागी हैं गेह तजि, पग पहिरै पैजार।
अंतर दया न ऊपजै, घनी सहैगा मार ॥४॥

७–साच का अंग

साच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जा के हिरदे साच है, ता हिरदे गुरु आप ॥१॥

(१) नाव।

साईं से साचा रहौ, साईं साच सुहाय।
भावै लम्बे केस रखु, भावै घोट मुँड़ाय ॥२॥
साचे स्राप न लागई, साचे काल न खाय।
साचे को साचा मिलै, साचे माहिँ समाय ॥३॥
साचे सौदा कीजिये, अपने जिव में जानि।
साचै हीरा पाइये, झूठै मूलहुँ हानि ॥४॥
जो तू साचा बानिया, साची हाट लगाय।
अंदर झाड़ू देइ कै, कूड़ा दूरि बहाय ॥५॥
तेरे अंदर साच जो, बाहर नाहिँ जनाव।
जाननहारा जानिहै, अंतरगति का भाव ॥६॥
जा की साची सुरत है, ता का साचा खेल।
आठ पहर चौंसठ घरी, साईं सेती मेल ॥७॥
साच बिना सुमिरन नहीं, भय बिन भक्ति न होय।
पारस में परदा रहै, कंचन केहि बिधि होय ॥८॥
अब तो हम कंचन भये, तब हम होते काच।
सतगुरु की किरपा भई, दिल अपने का साच ॥९॥
कंचन केवल हरि भजन, दूजा काच कथीर।
झूठा जाल जँजाल तजि, पकड़ा साच कबीर ॥१०॥
प्रेम प्रीति का चोलना, पहरि कबीरा नाच।
तन मन ता पर वारहूँ, जो कोइ बोलै साच ॥११॥
साच सबद हिरदे गहा, अलख पुरुष भरपूर।
प्रेम प्रीति का चोलना, पहिरे दास हजूर ॥१२॥
साधू ऐसा चाहिये, साची कहै बनाय।
कै टूटै कै फिरि जुरै, कहे बिनभरम न जाय ॥१३॥
जिन नर साच पिछानियाँ, करता केवल सार।
सो प्रानी काहे चलै, झूठे कुल की लार ॥१४॥

कबीर लज्जा लोक की, बोलै नाहीं साच।
जानि बूझि कंचन तजै, क्यों तू पकरै काच ॥१५॥
झूठ बात नहिं बोलिये, जब लगि पार बसाय।
अहो कबीरा साच गहु, आवा गवन नसाय ॥१६॥
साचै कोइ न पतीजई, झूठे जग पतियाय।
गली गली गोरस फिरै, मदिरा बैठि बिकाय ॥१७॥
साच कहूँ तो मारि हैं, झूठे जग पतियाय।
ये जग काली कूकरी, जो छेड़ै तो खाय ॥१८॥
साचे को साचा मिलै, अधिका बढ़ै सनेह।
झूठे को साचा मिलै, तड़दे टूटै नेह ॥१९॥
जा के बोली बंध नहिं, साच नहीं मन माहिं।
ता के संग न चालिये, छाड़ै पैंड़े माहिं ॥२०॥
कबीर पूँजी साहु की, तू मत खोवै ख्वार।
खरी बिगुर्चन होयगी, लेखा देती बार ॥२१॥
लेखा देना सहज है, जो दिल साचा होय।
साइ के दरबार में, पला न पकरै कोय ॥२२॥
..च सुनै अरु सत कहै, सत्त नाम की आस।
सत्त नाम को जानि करि, जग से रहै उदास ॥२३॥
साच हुआ तो क्या हुआ, (जो) नाम न साचाजान।
साचा है साचै मिलै, (तब) साचै माहिंसमान ॥२४॥
साचा सबद कबीर का, हिरदय देखु बिचारि।
चित दै समुझत है नहीं, (मोहिं) कहत भये जुगचारि ॥२५॥

८—बिचार का अंग

आगि कहे दाझै नहीं, पाँव न दीजै माहँ।
जो पै भेद न जानई, नाम कहा तौ काह ॥१॥

कबीर सोच बिचारिया, दूजा कोई नाहिं।
आपा परे जब चीन्हिया, उलटि समाना माहिं ॥२॥
पानी केरा पूतला, राखा पवन सँचार।
नाना बानी बोलता, जोति धरी करतार ॥३॥
आधी साखी सिर कटै, जो रे बिचारी जाय।
मनहिं प्रतीत न ऊपजै, राति दिवस भरि गाय ॥४॥
एक सबद में सब कहा, सबही अर्थ बिचार।
भजिये निर्गुन नाम को, तजिये बिषय बिकार ॥५॥
बोली तो अनमोल है, जो कोइ जानै बोल।
हिये तराजू तोलि के, तब मुख बाहर खोल ॥६॥
सहज तराजू आनि करि, सब रस देखा तोल।
सब रस माहीं जीभ रस, जो कोइ जानै बोल ॥७॥
ज्यौं आवै त्यौंहीं कहै, बोलै नाहिं बिचारि।
हतै पराई आतमा, जीभ लेइ तरवारि ॥८॥
बोलै बोल बिचारि कै, बैठै ठौर सँभारि।
कह कबीर वा दास को, कबहुँ न आवै हारि ॥९॥
बोली हमरी पलटिया, या तन याही देस।
खारी से मीठो करी, सतगुरु के उपदेस ॥१०॥
कबीर उलटे ज्ञान का, कैसे करूँ बिचार।
थिर बैठे मारग कटै, चला चलो नहिं पार ॥११॥
जो कछु करै बिचारि कै, पाप पुन्न तें न्यार।
कह कबीर इक जानि कै, जाय पुरुष दरबार ॥१२॥
आचारी सब जग मिला, बिचारी मिला न कोय।
कोटि अचारी वारिये, इक बिचारि जो होय ॥१३॥

६—बिबेक का अंग

फूटी आँखि बिवेक की, लखै न संत असंत।
जा के सँग दस बीस हैं, ता का नाम महंत ॥१॥
साधू मेरे सब बड़े, अपनी अपनी ठौर।
सबद बिवेकी पारखी, सो माथे के मौर ॥२॥
जब लगि नाहिँ बिवेक मन, तब लगि लगै न तीर।
भवसागर नाहीं तरै, सतगुरू कह कबीर ॥३॥
गुरुपसु नरपसु नारिपसु, बेदपसू संसार।
मानुष सोई जानिये, जाहि बिवेक बिचार ॥४॥
प्रगटै प्रेम बिवेक दल, अभय निसान बजाय।
उग्र ज्ञान उर आवताँ, यह सुनि मोह दुराय ॥५॥
कर बंदगी बिवेक की, भेष धरै सब कोय।
वा बँदगी बहि जानि दे, (जहँ) सबद बिबेक न होय ॥६॥
कहै कबीर पुकारि कै, कोई संत बिवेकी होय।
जा में सबद बिबेक है, छत्र-धनी है सोय ॥७॥
जीव जंतु जलहर बसै, गये बिबेक जु भूल।
जल के जलचर यों कहैं, हस उड़गन[1] समतूल ॥८॥
सत्तनाम सब कोइ कहै, कहिबे माहिँ बिवेक।
एक अनेकै फिरि मिलै, एक समाना एक ॥९॥
समझा समझा एक है, अनसमझा सब एक।
समझा सोई जानिये, जा के हृदय बिबेक ॥१०॥

बुद्धि और कुबुद्धि का अंग।

बुद्धि बिहूना आदमी, जानै नहीं गँवार।
जैसे कपि परबस पर्‍यौ, नाचै घर घर बार[2] ॥१॥

---

(१) तारा। (२) द्वार।

बुद्धि बिहूना अंध गज, परयौ फंद मैं आय।
ऐसे ही सब जग बँधा, कहा कहौं समझाय ॥२॥
पंख छता[1] परिबस परयो, सूआ के बुधि नाहिं।
बुद्धि बिहूना आदमी, यौं बंधा जग माँहिं ॥३॥
बुद्धि बिहूना सिंह ज्यौं, गयो ससा के संग।
अपनी प्रतिमा देखि कै, कीन्ह्यो तन को भंग ॥४॥
अक्किल अरस से ऊतरी, बिधना दीन्ही बाँटि।
एक अभागी रहि गया, एकन लीन्हो छाँटि ॥५॥
बिना वसीले चाकरी, बिना बुद्धि की दैह।
बिना ज्ञान का जोगना, फिरै लगाये खेह ॥६॥
गुन गाड़ै औगुन खनै, जिभ्या कटुक कुदार।
ऐसा मूरख दुर्जना, नरक जाय जम द्वार ॥७॥
समझ का घर और है, अनसमझा का और।
जा घर में साहिब बसै, बिरला जानै ठौर ॥८॥
मूरख को समझावते, ज्ञान गाँठि को जाय।
कोइला होइ न ऊजरो, नौ मन साबुन लाय ॥९॥
कोइला भी होइ ऊजरो, जरि बरि होय जो सेत।
मूरख होय न ऊजरो, ज्यौं कालर[2] का खेत ॥१०॥
मूरख से क्या बोलिये, सठ से कहा बसाय।
पाहन में क्या मारिये, चोखा तीर नसाय ॥११॥
पसुआ से पाला परा, रहि रहि हिये मैं खीज।
ऊसर परा न नीपजै, केतक डारै बीज ॥१२॥
एक सबद से सब कहै, गुरू सिष्य समझाय।
समझाया समझै नहीं, फिरि फिरि पूछै आय ॥१३॥

( ) आछत। (२) रेहार यानी रेह का।

मन का अंग।

मन के मते न चालिये, मन के मते अनेक।
जो मन पर असवार है, सो साधू कोइ एक ॥१॥
मन-मुरीद संसार है, गुरु-मुरीद कोइ साध।
जो मानै गुरु बचन को, ता का मता अगाध ॥२॥
मन को मारूँ पटकि के, टूक टूक ह्वै जाय।
बिष की क्यारी बोइ के, लुनता क्यौं पछिताय ॥३॥
मन को मारूँ पटकि के, टूक टूक ह्वै जाय।
टूटे पीछे फिरि जुरै, बीच गाँठि परि जाय ॥४॥
यह मन फटकि पिछोरि ले, सब आपा मिटि जाय।
पिंगल ह्वै पिउ पिउ करै, ता को काल न खाय ॥५॥
मन पाँचो के बस परा, मन के बस नहिँ पाँच।
जित देखूँ तित दौं लगी, जित भागूँ तित आँच ॥६॥
कबीर बैरी सबल हैं, एक जीव ऋपु पाँच।
अपने अपने स्वाद को, बहुत नचावैं नाँच ॥७॥
कबीर मन तो एक है, भावै तहाँ लगाय।
भावै गुरु की भक्ति कर, भावै विषय कमाय ॥८॥
मन के मारे बन गये, बन तजि बस्ती माहिँ।
कह कबीर क्या कीजिये, यह मन ठहरै नाहिँ ॥९॥
तीन लोक चोरी भई, सब का धन हर लीन्ह।
बिना सीस का चोरवा, पड़ा न काहू चीन्ह ॥१०॥
चोर भरोसे साहु के, लाया बस्तु चुराय।
पहिले बाँधो साहु को, चोर आप बँधि जाय ॥११॥
कबीर यह मन मसूखरा, कहौं तो मानै रोस।
जा मारग साहिब मिलै, तहाँ न चालै कोस ॥१२॥

जेती लहर समुद्र की, तेती मन की दौर।
सहजै हीरा नीपजै, जो मन आवै ठौर ॥१३॥
समुँद लहर तो थोड़िया, मन लहरैं घनियाय।
केती आइ समाइहै, केति जाइ बिसराय ॥१४॥
कबीर लहर समुद्र की, केती आवैं जाहिँ।
बलिहारी वा दास की, उलटि समावै वाहिँ ॥१५॥
दौड़त दौड़त दौड़िया, जहँ लगि मन को दौड़।
दौड़ थकी मन थिर भया, बस्तु ठौर की ठौर ॥१६॥
पहले यह मन काग था, करता जीवन घात।
अब तो मन हंसा भया, मोती चुगि चुगि खात ॥१७॥
कबीर मन परबत हुआ, अब मैं पाया जानि।
टाँकी लागी सबद की, निकसी कंचन खानि ॥१८॥
अगम पंथ मन थिर करै, बुद्धि करै परबेस।
तन मन सबही छाड़ि के, तब पहुँचै वा देस ॥१९॥
मनहीं को परमोधिये, मनहीं को उपदेस।
जो यहि मन को बसि करै, (ते) सिष्य होय सब देस ॥२०॥
कबीर सीढ़ी साँकरी, चंचल मनुवाँ चोर।
गुन गावै लौलीन ह्वै, मन मैं कछु इक और ॥२१॥
चंचल मनुवाँ चेत रे, सोवै कहा अजान।
जमधर[1] जम ले जायगा, पड़ा रहैगा म्यान ॥२२॥
कबीर मन मैला भया, या मैं बहुत बिकार।
यह मन कैसे धोइये, साधो करो बिचार ॥२३॥
गुरु धोबी सिष कापड़ा, साबुन सिरजनहार।
सुरत सिला पर धोइये, निकसै रंग अपार ॥२४॥

(१) तलवार।

मन गोरख मन गोबिंदा, मनहीं औघड़ सोय।
जो मन राखै जतन करि, आपै करता होय ॥२५॥
पय पानी की प्रीतड़ी, पड़ा जो कपटी नोन।
खंड खंड न्यारे भये, ताहि मिलावै कौन ॥२६॥
मन मोटा मन पतरा, मन पानी मन लाय[1]।
मन के जैसी ऊपजै, तैसी ही ह्वै जाय ॥२७॥
मन दाता मन लालची, मन राजा मन रंक।
जो यह मन गुरु से मिलै, तौ गुरु मिलै निसंक ॥२८॥
कबहूँ मन गगना चढ़ै, कबहूँ गिरै पताल।
कबहूँ मन उन्मुनि लगै, कबहूँ जावै चाल ॥२९॥
मन के बहुतक रंग हैं, छिन छिन बदलै सोय।
एकै रंग में जो रहै, ऐसा बिरला कोय ॥३०॥
कोटि करम पल में करै, यह मन विषया स्वाद।
सतगुरु सबद न मानही, जनम गँवावै बाद ॥३१॥
कबीर मन गाफिल भया, सुमिरन लागै नाहिँ।
घनो सहैगा सासना, जम की दरगह माहिँ ॥३२॥
कागद केरी नावरी, पानी केरी गंग।
कह कबीर कैसे तरूँ, पाँच कुसंगी संग ॥३३॥
इन पाँचो से बंधि करि, फिर फिर धरै सरीर।
जो यह पाँचो बसि करै, सोई लागै तीर[2] ॥३४॥
मनुवाँ तो पंछी भया, उड़ि के चला अकास।
ऊपर ही तें गिरि पड़ा, मन माया के पास ॥३५॥
मन पंछी तब लगि उड़ै, बिषय बासना माहिँ।
प्रेम बाज की झपट में, जब लगि आयो नाहिँ ॥३६॥

---

(१) आग। (२) किनारे।

जहाँ बाज बासा करै, पंछी रहै न और।
जा घट प्रेम प्रगट भया, नाहिं करम को ठौर ॥३७॥
मन कुंजर महमंत था, फिरता गहिर गँभीर।
दुहरी तिहरी चौहरी, परि गइ प्रेम जँजीर ॥३८॥
अपने अपने चोर को, सब कोइ डारै मार।
मेरा चोर मुझे मिलै, तो सरबस डारूँ वार ॥३९॥
कबीर यह मन लालची, समझै नहीं गँवार।
भजन करन को आलसी, खाने को हुसियार ॥४०॥
या तन में मन कहँ बसै, निकसि जाय केहि ठौर।
गुरु गम होय तो परखि ले, नहिं तो कर गुरु और ॥४१॥
नैनों माहीं मन बसै, निकसि जाय नौ ठौर।
गुरु गम भेद बताइया, सब संतन सिर मौर ॥४२॥
यह तो गति है अटपटी, सटपट लखै न कोय।
जो मन की खटपट मिटै, चटपट दरसन होय ॥४३॥
हिरदे भीतर आरसी, मुख देखा नहिं जाय।
मुख तौ तबहीं देखसी, दिल की दुबिधा जाय ॥४४॥
तन माहीं जो मन धरै, मन धरि उज्जल होय।
साहिब से सन्मुख रहै, अजर अमर सो होय ॥४५॥
पानी हूँ तें पातला, धूआँ हूँ तें झीन।
पवन हुँ तें उतावला[१], दोस्त कबीरा कीन्ह ॥४६॥
मेरा मन हंसा रमै, हंसा गमनि रहाय।
बगुला मन मानै नहीं, घर आँगन फिरि जाय ॥४७॥
पुहुप बास तें पातला, सूच्छम जा को रंग।
कबीर ता से मिलि रहा, कबहुँ न छोड़ै संग ॥४८॥

---

(१) तेज़।

मन मनसा को मारि ले, घट ही माहीं घेर।
जब ही चालै पीठि दै, आँकुस दै दै फेर॥४९॥

मन मनसा को मारि करि, नन्हा करि के पीस।
तब सुख पावै सुन्दरी, पदुम झलक्कै सीस॥५०॥

मन मनसा जब जायगी, तब आवैगी और।
जब मन निःचल होयगा, तब पावैगा ठौर॥५१॥

काया कजली बन अहै, मन कुंजर महमंत।
आँकुस ज्ञान रतन्न का, फेरै बिरला संत॥५२॥

कबीर मनहिँ गजंद है, आँकुस दै दै राखु।
बिष की बेली परिहरो, अमृत का फल चाखु॥५३॥

काया देवल मन धुजा, बिषय लहरि फहराय।
मन चालै देवल चलै, ता को सरबस जाय॥५४॥

काया कसौ कमान ज्यौँ, पाँच तत्त करि बान।
मारो तौ मन मिरग को, नातरु मिथ्या जान॥५५॥

सुर नर मुनि सब को ठगे, मनहिँ लिया अवतार।
जो कोई या तेँ बचै, तीन लोक तेँ न्यार॥५६॥

कुंभै बाँधा जल रहै, जल बिनु कुंभ न होय।
ज्ञानै बाँधा मन रहै, मन बिनु ज्ञान न होय॥५७॥

मन माया तो एक है, माया मनहिँ समाय।
तीन लोक संसय परी, काहि कहौँ समझाय॥५८॥

मन माया की कोठरी, तन संसय को कोट।
बिषहर मंत्र मानै नहीँ, काल सर्प की चोट॥५९॥

मन सायर मनसा लहरि, बूड़े बहे अनेक।
कह कबीर ते बाचिहै, जा के हृदय बिवेक॥६०॥

नैनन आगे मन बसै, रल पिल करै जो दौर।
तीन लोक मन भूप है, मन पूजा सब ठौर॥६१॥

तन बोहित[1] मन काग है, लख जोजन उड़ि जाय।
कबहीं दरिया अगम बहि, कबहीं गगन समाय ॥६२॥

॥ सोरठा ॥

मन जानै सब बात, जानि बूझि औगुन करै।
काहे की कुसलात, लै दीपक कूएँ परै ॥६३॥

॥ साखी ॥

कबीर मन मरकट भया, नेक न कहुँ ठहराय।
सत्त नाम बाँधे बिना, जित भावै तित जाय ॥६४॥

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
कह कबीर पिउ पाइये, मनहीं की परतीत ॥६५॥

मन जो गया तो जानि दे, दृढ़ करि राखु सरीर।
बिना चढ़े कमान के, कैसे लागै तीर ॥६६॥

बिना सीस का मिरग है, चहुँ दिसि चरने जाय।
बाँधि लाव गुरु ज्ञान से, राखौ तत्त लगाय ॥६७॥

तन तुरंग असवार मन, कर्म पियादा साथ।
त्रिसना चली सिकार को, बिषै बाज लिये हाथ ॥६८॥

मना मनोरथ छाड़ि दे, तेरा किया न होय।
पानी में घी नीकसै, सूखा खाय न कोय ॥६९॥

कहत सुनत सब दिन गये, उरझि न सुरझा मन।
कह कबीर चेता नहीं, अजहूँ पहिला दिन ॥७०॥

मन नाहीं छाड़ै बिषय, बिषय न मन को छाड़ि।
इन का यही सुभाव है, पूरी लागी आड़ि[2] ॥७१॥

अकथ कथा या मनहिं की, कह कबीर समझाय।
जा को येहि समझि परै, ता को काल न खाय ॥७२॥

मेरा मन मकरंद था, करता बहुत बिगार।
सूधा ह्वै मारग चला, गुरु आगे हम लार ॥७३॥

(१) नाव। (२) अड़, हट।

मनुवाँ तो अंतर बसा, बहुतक झीना होय।
अमर लोक सुचि[1] पाइया, कबहुँ न न्यारा होय ॥७४॥

माया का अंग।

माया छाया एक सी, बिरला जानै कोय।
भगता के पाछे फिरै, सनमुख भागै सोय ॥१॥[2]

कबीर माया पापिनी, माँगी मिलै न हाथ।
मना उतारी झूठ करि, (तब) लागी डोलै साथ ॥२॥

माया तो ठगनी भई, ठगत फिरै सब देस।
जा ठग या ठगनी ठगी, ता ठग को आदेस ॥३॥

कबीर माया पापिनी, फँद लै बैठी हाट।
सब जग तो फंदे परा, गया कबीरा काट ॥४॥

कबीर माया पापिनी, ताही लाये लोग।
पूरी किनहुँ न भोगिया, या का यही बियोग ॥५॥

कबीर माया बेसवा, दोनोँ की इक जाति।
आवत कौं आदर करै, जात्त न पूछै बाति ॥६॥

मोती उपजै सीप मेँ, सीप समुन्दर जोय।
रंचक संचर[3] रहि गया, ना कछु हुआ न होय ॥७॥

कबीर माया रूखड़ी, दो फल की दातार।
खावत खरचत मुक्ति भे, संचत नरक दुवार ॥८॥

खान खरचन बहु अंतरा, मन मेँ देखु बिचार।
एक खवाया साधु को, एक मिलाया छार ॥९॥

कबीर माया जात है, सुनो सबद निज मोर।
सखियोँ[4] के घर संतजन, सूमोँ के घर चोर ॥१०॥

---

(१) पवित्रता, निरमलता। (२) जो माया अर्थात संसार से भागै उसके तो वह छाया की नाईँ पीछे लगी फिरती है और जो उसके सन्मुख होकर उसका याचक हो उससे भागती है अर्थात नहीँ मिलती। (३) संचार, प्रवेश। (४) दाता

संतोँ खाई रहत है, चोरा लीन्ही जाय ।
कहै कबीर विचारि के, दरगह मिलिहै आय ॥११॥
माया तो है राम की, मोदी सब संसार ।
जा को चिट्ठी ऊतरी, सोई खरचनहार ॥१२॥
माया संचै संग्रहै, वह दिन जानै नाहिँ ।
सहस बरस की सब करै, मरै महूरत[1] माहिँ ॥१३॥
कबीर सो धन संचिये, जो आगे को होय ।
मूड़ चढ़ाये गाठरी, जात न देखा कोय ॥१४॥
कबीर माया मोहिनी, मोहे जान सुजान ।
भागे हूँ छूटै नहीँ, भरि भरि मारै बान ॥१५॥
कबीर माया मोहिनी, जैसी मीठी खाँड ।
सतगुरु की किरपा भई, नातर करती भाँड ॥१६॥
कबीर माया मोहिनी, सब जग घाला घानि ।
कोइ इक साधू ऊबरा, तोड़ी कुल की कानि ॥१७॥
कबीर माया मोहिनी, भइ अँधियारी लोय ।
जे सूता तेहि मूसि लै, रहे बस्तु को रोय ॥१८॥
माया मन की मोहिनी, सुर नर रहे लुभाय ।
माया इन सब खाइया, माया कोइ न खाय ॥१९॥
कबीर माया डाकिनी, सब काहू को खाय ।
दाँत उपाहूँ पापिनी, (जो) संतोँ नियरे जाय ॥२०॥
माया दासी संत की, ऊभी[2] देहि असीस ।
बिलसी अरु लातोँ छरी, सुमिरि सुमिरि जगदीस ॥२१॥
मोटी माया सब तजै, झीनी तजी न जाय ।
पीर पयम्बर औलिया, झीनी सब को खाय ॥२२॥

---

(१) छिन । (२) खड़ी ।

झीनी माया जिन तजी, मोटी गई बिलाय।
ऐसे जन के निकट से, सब दुख गयो हिराय ॥२३॥
माया आगे जीव सब, ठाढ़ रहैं कर जोरि।
जिन सिरजा जल बुंद से, ता से बैठे तोरि ॥२४॥
माया के झक[1] जग जरै, कनक कामिनी लागि।
कह कबीर कस बाचिहै, रुई लपेटी आगि ॥२५॥
मैं जानूँ हरि से मिलूँ, मो मन मोटी आस।
हरि बिच डारै अंतरा, माया बड़ी पिचास[2] ॥२६॥
कबीर माया सूम की, देखनहीं का लाड़।
जो वा में कौड़ी घटै, तौ हरि तोड़ै हाड़ ॥२७॥
या माया जग भरमिया, सब को लगी उपाध।
यहि तारन के कारने, जग में आये साध ॥२८॥
कबीर या संसार की, झूठो माया मोह।
जेहि घर जिता बधावना, तेहि घर तेता द्रोह ॥२९॥
भूले थे यहँ आइ के, माया संग लुभाय।
सतगुरु राह बताइया, फेरि मिलूँ तेहि जाय ॥३०॥
सौ पापन को मूल है, एक रुपैया रोक।
साधू ह्वै संग्रह करै, हारै हरि सा थोक[3] ॥३१॥
माया है दुइ भाँति की, देखो ठोंक बजाय।
एक मिलावै नाम से, एक नरक लै जाय ॥३२॥
या माया है चूहड़ी[4], औ चुहड़े की जोय।
बाप पूत अरुझाय के, संग न केहु के होय ॥३३॥
माया के बस सब परे, ब्रह्मा बिस्नु महेस।
नारद सारद सनक अरु, गौरी-पुत्र गनेस ॥३४॥

---

(१) आँच। (२) पिशाच, भूतिनी। (३) जमा, माल। (४) भंगिन।

आँधी आई ज्ञान की, ढही भरम की भीति।
माया टाटी उड़ि गई, लगी नाम से प्रीति ॥३५॥
मीठा सब कोइ खात है, बिष ह्वै लागै धाय।
नीब न कोई पीवसी, सर्ब रोग मिटि जाय ॥३६॥
माया तरवर त्रिबिधि का, साख बिषय संताप।
सीतलता सपने नहीं, फल फीका तन ताप ॥३७॥
जिन को साईं रँग दिया, कभी न होइँ कुरंग।
दिन दिन बानी आगरी, चढ़ै सवाया रंग ॥३८॥
माया दीपक नर पतँग, भ्रमि भ्रमि माहिँ परंत।
कोई एक गुरु ज्ञान तें, उबरे साधू संत ॥३९॥

कनक और कामिनी का अंग।

चलौं चलौं सब कोइ कहै, पहुँचै बिरला कोय।
एक कनक अरु कामिनी, दुरगम घाटी दोय ॥१॥
नारी की झाँईं परत, अंधा होत भुजंग।
कबीर तिन की कौन गति, (जो)नित नारी के संग ॥२॥
कामिनि काली नागिनी, तीनौं लोक मँझारि।
नाम सनेही ऊबरे, बिषई खाये झारि ॥३॥
कामिनि सुंदर सर्पिनी, जो छेड़ै तेहि खाय।
जो गुरु चरनन राचिया, तिन के निकट न जाय ॥४॥
इक नारी इक नागिनी, अपना जाया खाय।
कबहूँ सरपट नीकसै, उपजै नाग बलाय ॥५॥
नैनौं काजर पाइ कै, गाढ़े बाँधे केस।
हाथौं मिहँदी लाइ कै, बाघिनि खाया देस ॥६॥
पर नारी के राचने, सीधा नरकै जाय।
तिन को जम छाड़ै नहीं, कोटिन करै उपाय ॥७॥

पर नारी पैनी छुरी, मत कोइ लावो अंग ।
रावन के दस सिर गये, पर नारी के संग ॥८॥
पर नारी पैनी छुरी, बिरला बाचै कोय ।
ना वहि पेट सँचारिये, (जो) सर्व सोन की होय ॥९॥
पर नारी का राचना, ज्यौं लहसुन की घ्रान[१] ।
कोने बैठि के खाइये, परगट होय निदान ॥१०॥
पर नारी के राचने, औगुन है गुन नाहिँ ।
खार समुंदर माछरी, केती बहि बहि जाहिँ ॥११॥
पर नारी पर सुंदरी, जैसे सूली साल ।
नित कलेस भुगतै सही, तहू न छोड़ै खाल ॥१२॥
दीपक सुन्दर देखि कै, जरि जरि मरै पतंग ।
बढ़ी लहर जो बिषय की, जरत न मोड़ै अंग ॥१३॥
नारि पराई आपनी, भोगै नरकै जाय ।
आग आग सब एक सी, हाथ दिये जरि जाय ॥१४॥
जहर पराया आपना, खाये से मरि जाय ।
अपनी रच्छा ना करै, कह कबीर समझाय ॥१५॥
कूप पराया आपना, गिरै बूड़ि जो जाय ।
ऐसा भेद बिचारि कै, तू मत गोता खाय ॥१६॥
छुरी पराई आपनी, मारे दर्द जो होय ।
बहु बिधि कहूँ पुकार कै, कर छूवो मत कोय ॥१७॥
नारी निरखि न देखिये, निरखि न कीजै दौर ।
देखेही तेँ बिष चढ़ै, मन आवै कछु और ॥१८॥
जो कबहूँ कै देखिये, बीर बहिन के भाय ।
आठ पहर अलगा रहै, ता को काल न खाय ॥१९॥

---

(१) दुर्गंध ।

सर्व सोने की सुंदरी, आवै बास सुबास।
जो जननी होय आपनी, तऊ न बैठै पास ॥२०॥
नारि नसावै तीन गुन, जो नर पासे होय।
भक्तिमुक्ति निज ध्यानमैं, पैठि न सक्कै कोय ॥२१॥
गाय रोय हँस खेलि के, हरत सबन के प्रान।
कह कबीर या घात को, समझैं संत सुजान ॥२२॥
नारी नदी अथाह जल, बूड़ि मुवा संसार।
ऐसा साधू न मिला, जा सँग उतरूँ पार ॥२३॥
गाय भैंस घोड़ी गधी, नारि नाम है तास।
जा मंदिर में यह बसैं, तहाँ न कीजै बास ॥२४॥
नारि रचंते पुरुष हैं, पुरुष रचंती नारि।
पुरुष पुरुष तैं राचते, ते बिरले संसार ॥२५॥
नारि कहौं की नाहरी, नख सिख से यह खाय।
जल बूड़ा तो ऊबरै, भग बूड़ा बहि जाय ॥२६॥
भग भोगे भग ऊपजे, भग तैं बचै न कोय।
कह कबीर भग तैं बचै, भक्त कहावै सोय ॥२७॥
सेवक अपना करि लई, आज्ञा मेटै नाहिँ।
भग मंतर दै गुरु भई, सिष हो सबै कमाहिँ ॥२८॥
कबीर नारि की प्रीति से, केते गये गड़ंत।
केते औरौ जाहिँगे, नरक हसंत हसंत ॥२९॥
फाटे[1] कानौं बाघिनी, तीन लोक को खाय।
जावत खाय कलेजरा, मुए नरक लै जाय ॥३०॥
नारी नाहीं नाहरी, करै नैन की चोट।
कोइ कोइ साधू ऊबरै, लै सतगुरु की ओट ॥३१॥

(१) फटकारे हुये।

नारी नाहीं जम अहै, तू मत राचै जाय।
मंजारो[1] ज्यों बोलि कै, काढ़ि करेजा खाय ॥३२॥
नारी नदिया सारिखी, बहै अपरबल पूर।
साहिब से न्यारा रहै, अंत परै मुख धूर ॥३३॥
एक कनक अरु कामिनी, ये लंबी तरवारि।
चाले थे गुरु मिलन को, बीचहिं लीन्हा मारि ॥३४॥
एक कनक अरु कामिनी, दोऊ अगिन की झाल।
देखतही तें परजवलै, परसि करै पैमाल ॥३५॥
एक कनक अरु कामिनी, बिष फल लिया उपाय।
देखतही तें बिष चढ़ै, चाखतही मरि जाय ॥३६॥
एक कनक अरु कामिनी, तजिये भजिये दूर।
गुरु बिच पारै अंतरा, जम देसी मुख धूर ॥३७॥
रज बीरज की कोठरी, ता पर साज्यो रूप।
एक नाम बिन बूड़सी, कनक कामिनी कूप ॥३८॥
जहाँ जराई सुंदरी, तू जनि जाय कबीर।
उड़ि के भस्म जो लागसी, सूना होय सरीर ॥३९॥
नारी तो हम भी करी, जाना नाहिं बिचार।
जब जानी तब परिहरी, नारी बड़ी बिकार ॥४०॥
छोटी मोटी कामिनी, सबही बिष की बेल।
बैरी मारै दाँव दै, यह मारै हँसि खेल ॥४१॥
नागिन के तो दोय फन, नारी के फन बीस।
जा का डसा न फिरि जिये, मरिहै बिस्वा बीस ॥४२॥
नारी नदिया सारिखो, और जो प्रगटै काल।
सब कालन तें बाचिहै, नारी जम का जाल ॥४३॥

---

(१) बिल्ली।

दीपक झोला पवन का, नर का झोला नारि।
साधू झोला सबद का, बोलै नाहिँ बिचारि ॥४४॥
नारि पुरुष की इसतरी, पुरुष नारि का पूत।
याही ज्ञान बिचारि कै, छाड़ि चला अबधूत ॥४५॥
अबिनासी बिच धार तिन[1], कुल कंचन अरु नार।
जो कोइ इन तेँ बचि चलै, सोई उतरै पार ॥४६॥
नारि से नजरि न जोरिये, अंसहिँ खिस है जाय।
जा के चित नारी बसै, चारि अंस लै जाय ॥४७॥

॥ सोरठा ॥

नारी सेती नेह, बुधि बिबेक सबही हरै।
कहा गँवावे देँह, कारज कोई ना सरै ॥४८॥

निद्रा का अंग।

कबीर सोया क्या करै, जागि के जपो दयार।
एक दिना है सोवना, लम्बे पैर पसार ॥१॥
कबीर सोया क्या करै, उठि न भजो भगवान।
जमधर[2] जब लै जायँगे, पड़ा रहैगा म्यान ॥२॥
कबीर सोया क्या करै, सोये होय अकाज।
ब्रह्मा का आसन डिगा, सुनी काल की गाज ॥३॥
कबीर सोया क्या करै, उट्ठि न रोवै दुक्ख।
जा का बासा गोर[3] में, सो क्योँ सोवै सुक्ख ॥४॥
कबीर सोया क्या करै, जागन की करु चौँप।
ये दम हीरा लाल है, गिनि गिनि गुरु को सौँप ॥५॥
कबीर सोया क्या करै, काहे न देखै जागि।
जा के सँग तेँ बीछुरा, ताही के सँग लागि ॥६॥

---

(१) तीन। (२) तलवार। (३) क़बर।

नींद निसानी मीच की, उट्ठ कबीरा जागु।
और रसायन छाड़ि कै, नाम रसायन लागु ॥७॥
सोया सो निरफल गया, जागा सो फल लेय।
साहिब हक्क न राखसी, जब माँगै तब देय ॥८॥
पिउ पिउ कहि कहि कूकिये, ना सोइये इसरार[1]।
रात दिवस के कूकते, कबहुँक लगै पुकार ॥९॥
सोता साध जगाइये, करै नाम का जाप।
यह तीनौं सोते भले, साकित सिंह अरु साँप ॥१०॥
जागन से सोवन भला, जो कोइ जानै सोय।
अंतर लौ लागी रहै, सहजै सुमिरन होय ॥११॥
जागन मेँ सोवन करै, सोवन मेँ लौ लाय।
सुरति डोर लागी रहै, तार टूटि नहिँ जाय ॥१२॥
कबीर खालिक जागता, और न जागै कोय।
कै जागै विषया भरा, कै दास बंदगी सोय ॥१३॥

निंदा का अंग।

निन्दक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय ॥१॥
निन्दक दूरि न कीजिये, दीजै आदर मान।
निर्मल तन मन सब करै, बकै आनही आन ॥२॥
निन्दक हमरा जनि मरो, जीवो आदि जुगादि।
कबीर सतगुरु पाइया, निन्दक के परसादि ॥३॥
कबीर मेरे साधु की, निन्दा करौ न कोय।
जो पै चन्द्र कलंक है, तऊ उँजारा होय ॥४॥

(१) भेद।

जो कोइ निन्दै साधु को, संकट आवै सोइ।
नरक माहिँ जनमै मरै, मुक्ति न कबहूँ होइ ॥५॥
तिनका कबहुँ न निन्दिये, जो पाँवन तर होय।
कबहूँ उड़ि आँखिन परै, पीर घनेरी होय ॥६॥
सातो सायर[1] मैं फिरा, जंबु दीप दै पीठ।
पर निन्दा नाहीं करै, सो कोइ बिरला दीठ ॥७॥
दोष पराया देख करि, चले हसंत हसंत।
अपने याद न आवई, जा का आदि न अंत ॥८॥
निन्दक एकहु मत मिलै, पापी मिलै हजार।
इक निन्दक के सीस पर, कोटि पाप को भार ॥९॥

[अहार]

स्वादिष्ट भोजन का अंग।

खट्टा मीठा चरपरा, जिह्वा सब रस लेय।
चोराँ कुतिया मिलि गई, पहरा किस का देय ॥१॥
खट्टा मीठा देखि कै, रसना मेलै नीर
जबलगि मन पाको नहीं, काँचो निपट कथीर ॥२॥
अहार करै मन भावता, जिह्वा केरे स्वाद।
नाक तलक पूरन भरै, को कहिहै परसाद ॥३॥
माखी गुड़ मैं गड़ि रही, पंख रह्यो लपटाय।
तारी पीटै सिर धुनै, लालच बुरी बलाय ॥४॥

मांस अहार का अंग।

माँस अहारी मानवा, परतछ राछस अंग।
ता की संगति मत करो, परत भजन मैं भंग ॥१॥

---

(१) समुद्र।

माँस मछरिया खात हैं, सुरा पान से हेत।
सो नर जड़ से जाहिंगे, ज्यों मूरी का खेत ॥२॥
माँस माँस सब एक है, मुरगी हिरनी गाय।
आँखि देखि नर खात है, ते नर नरकहिँ जाय ॥३॥
यह कूकर को खान है, मनुष देँह क्यों खाय।
मुख में आमिख[1] मेलता, नरक परै सो जाय ॥४॥
बिष्टा[2] का चैाका दिया, हाँड़ी सीझै हाड़।
छूत बरावै चाम की, ता का गुरु है राड़[3] ॥५॥
हनिया सोई हब्सी, भावै जानि बिजान।
कर गहि चोटी तानसी, साहिब के दीवान ॥६॥
तिल भर मछरी खाइकै, कोटि गऊ दै दान।
कासी करवत लै मरै, तैा हू नरक निदान ॥७॥
बकरी पाती खात है, ता की काढ़ी खाल।
जो बकरी को खात हैं, तिन का कौन हवाल ॥८॥
पीर सबन को एकसी, मूरख जानै नाहिं।
अपना गला कटाइ कै, भिस्त[4] बसै क्यों नाहिं ॥९॥
मुरगी मुल्ला से कहै, जिबह करत है मोहिं।
साहिब लेखा माँगसी, संकट परिहै तोहिं ॥१०॥
काला मुँह कर करद[5] का, दिल से दुई निवार।
सबही सुरति सुभान[6] की, अहमक मुला[7] न मार ॥११॥
गल गुस्सा का काटिये, मियाँ कहर को मार।
जो पाँचो बिसमिल[8] करै, तो पावै दीदार ॥१२॥
दिन को रोजा रहत है, रात हनत है गाय।
येह खून वह बंदगी, कहु क्यों खुसी खुदाय ॥१३॥

(१) माँस। (२) गोबर। (३) कलह? (४) बिहिश्त=बैकुण्ठ। (५) छुरी। (६) खुदा। (७) मुल्ला। (८) ज़िबह, अधमुआ।

खुस खाना है खीचरी, माहिं परा टुक नोन।
माँस पराया खाइ करि, गला कटावे कौन ॥१४॥
कहता हूँ कहि जात हूँ, कहा जो मान हमार।
जा का गर तुम काटिहौ, सो फिर काटि तुम्हार ॥१५॥
हिन्दू के दाया नहीं, मिहर तुरुक के नाहिं।
कह कबीर दोनों गये, लख चौरासी माहिं ॥१६॥

नशे का अंग।

गऊ जो बिष्टा भच्छई, बिप्र तमाखू भंग।
सस्तर बाँधे दर्सनी[1], यह कलियुग का रंग ॥१॥
कलिजुग काल पठाइया, भाँग तमाल[2] अफीम।
ज्ञान ध्यान की सुधि नहीं, बसै इन्हीं की सीम[3] ॥२॥
भाँग तमाखू छूतरा, अफयूँ[4] और सराब।
कह कबीर इन को तजै, तब पावै दीदार ॥३॥
औगुन कहूँ सराब का, ज्ञानवंत सुनि लेय।
मानुष से पसुआ करै, द्रब्य गाँठि को देय ॥४॥
अमल अहारी आतमा, कबहुँ न पावै पारि।
कहै कबीर पुकारि कै, त्यागौ ताहि बिचारि ॥५॥
मद तो बहुतक भाँति का, ताहि न जानै कोय।
तनमद मनमद जातिमद, मायामद सब लोय ॥६॥
बिद्यामद और गुनहुँ मद, राज मद्द उनमद्द।
इतने मद को रद करै, तब पावै अनहद्द ॥७॥
कबीर मतवाला नाम का, मद मतवाला नाहिं।
नाम पियाला जो पियै, सो मतवाला नाहिं ॥८॥

---

(१) कनफटा साधू (२) तमाखू। (३) हद में। (४) अफ़ीम।

सादे खान पान का अंग ।

रूखा सूखा खाइ कै, ठंडा पानी पीव ।
देखि बिरानी चूपड़ी, मत ललचावै जीव ॥१॥
कबीर साईं मुज्झ को, रूखी रोटी देय ।
चुपड़ी माँगत मैं डरूँ, (कहूँ) रूखी छीनि न लेय ॥२॥
आधी अरु रूखी भली, सारी से संताप ।
जो चाहैगा चूपड़ी, (तो) बहुत करैगा पाप ॥३॥
अन पानी आहार है, स्वाद संग नहिं खाय ।
जो चाहै दीदार को, (तो) चुपड़ो चखै बलाय ॥४॥

आनदेव की पूजा का अंग ।

सौ बरसाँ भक्ती करै, इक दिन पूजै आन ।
सो अपराधी आतमा, परि चौरासी खान ॥१॥
सत्त नाम को छाड़ि कै, करै आन को जाप ।
ता के मुहड़े दीजिये, नौसादर को बाप[1] ॥२॥
सत्त नाम को छाड़ि कैं, करै और को जाप ।
बेस्या केरे पूत ज्यों, कहै कौन को बाप ॥३॥
सत्त नाम को छाड़ि कै, करै अन्य की आस ।
कह कबीर ता दास का, होय नरक में बास ॥४॥
कामी तरै क्रोधी तरै, लोभी तरै अनंत ।
आन उपासी कृतघ्नी, तरै न गुरू कहंत ॥५॥
देवी देव मानै सबै, अलख न मानै कोय ।
जा अलख का सब किया, ता से बेमुख होय ॥६॥

---

(१) विष्ठा ।

एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।
जो गहि सेवै मूल को, फूलै फलै अघाय ॥७॥

मूरत पूजा का अंग।

पाहन केरी पूतरी, करि पूजै करतार।
वाहि भरोसे मत रहो, बूड़ो काली धार ॥१॥
काजर केरी कोठरी, मसि के किये कपाट।
पाहन भूली पिरथवी, पंडित पारी बाट ॥२॥
पाहन को क्या पूजिये, जो नहिँ देइ जवाब।
अंधा नर आसामुखी, योँहीँ होय खराब ॥३॥
हम भी पाहन पूजते, होते बन के रोझ।
सतगुरु की किरपा भई, डारा सिर का बोझ ॥४॥
पाहन पूजे हरि मिलै, तो मैं पुजूँ पहार।
ता तेँ यह चाकी भली, पीसि खाय संसार ॥५॥
मूरति धरि धंधा रचा, पाहन का जगदीस।
मोल लिया बोलै नहीँ, खोटा बिस्वा बीस ॥६॥
पाथर ही का देहरा, पाथर ही का देव।
पूजनहारा आँधरा, क्योँकरि मानैं सेव ॥७॥
पाहन पानी पूजि कै, सेवा जासी बाद।
सेवा कीजै साध की, सत्तनाम करु याद ॥८॥
पाथर लै देवल चुना, मोटी मूरति माँहि।
पिंड फूटि परबस रहै, सो लै तारै काहि ॥९॥
कागद केरी नावरी, पाहन गरुवा भार।
कहै कबीर बिचारि कै, भव बूड़ा संसार ॥१०॥
कबीर दुनिया देहरे, सीस नवावन जाय।
हिरदे माहीं हरि बसैं, तू ताही लौ लाय ॥११॥

मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जान।
दस द्वारे का देहरा, ता मेँ जोति पिछान ॥१२॥
काँकर पाथर जोरि के, मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय॥१३॥
मुल्ला चढ़ि किलकारिया, अलख न बहिरा होय।
जेहि कारन तूँ बाँग दे, सो दिलही अंदर जोय ॥१४॥
तुर्क मसीते हिन्दू देहरे, आप आप को धाय।
अलख पुरुष घट भीतरे, ता का द्वार न पाय ॥१५॥
पूजा सेवा नेम ब्रत, गुड़ियन का सा खेल।
जब लगि पिव परसै नहीं, तब लगि संसय मेल ॥१६॥
कबीर या संसार को, समझायो सौ बार।
पूँछ तो पकड़े भेड़ की, उतरा चाहै पार ॥१७॥

तीर्थ ब्रत का अंग।

जप तप दीखै थोथरा, तीरथ ब्रत बिस्वास।
सूआ सँभल सेइ कै, फिर उड़ि चला निरास ॥१॥
तीरथ ब्रत बिष बेलरी, सब जग राखा छाय।
कबीर मूल निकंदिया, कौन हलाहल खाय ॥२॥
तीरथ ब्रत करि जग मुआ, जूड़े पानी न्हाय।
सत्त नाम जाने बिना, काल जुगन जुग खाय ॥३॥
तीरथ चाले दुइ जना, चित चंचल मन चोर।
एको पाप न उतरिया, मन दस लाये और ॥४॥
न्हाये धोये क्या भया, जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जल मेँ रहै, धोये बास न जाय ॥५॥
निर्मल गुरु के नाम से, कै निर्मल साधू भाय।
कोइला होइ न ऊजला, सौ मन साबुन लाय ॥६॥

कोटि कोटि तीरथ करै, कोटि कोटि करि धाम।
जब लगि साधु न सेइहै, तब लगि काँचा काम ॥७॥
मन में तो फूला फिरै, करता हूँ मैं धर्म।
कोटि करम सिर पर चढ़ै, चेति न देखै मर्म ॥८॥
और धरम सब करम हैं, भक्ति धरम निःकर्म।
नदिया हत्यारी अहै, कुवा बावड़ी भर्म ॥९॥
कर्म हमारे काटिहै, कोइ गुरुमुख कलि माहिँ।
कहै हमारी बासना, सो गुरुमुख कहियत नाहिँ॥१०॥
बहुत दान जो देत हैं, करि करि बहुतै आस।
काहू के गज होहिंगे, खइहैं सेर पचास ॥११॥

पंडित और संस्कृत का अंग।

संस्कृतहिँ पंडित कहै, बहुत करै अभिमान।
भाषा जानि तरक करै, ते नर मूढ़ अजान ॥१॥
संस्किरत संसार में, पंडित करै बखान।
भाषा भक्ति दृढ़ावही, न्यारा पद निरबान ॥२॥
संसकिरत है कूप जल, भाषा बहता नीर।
भाषा सतगुरु सहित है, सत मत गहिर गँभीर ॥३॥
पूरन बानो बेद की, सोहत परम अनूप।
आधी भाषा नेत्र बिन, को लखि पावै रूप ॥४॥
बानो तो पानी भरै, चारो बेद मजूर।
करनी तो गारा करै, रहनी का घर दूर ॥५॥
बेद कहै जानौँ न कछु, स्वासा के सँग आय।
दरस हेतु करूँ बंदगी, गुन अनेक मैं गाय ॥६॥
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय।
एकै अच्छर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय ॥७॥

पढ़ि पढ़ि तो पत्थर भया, लिखि लिखि भया जो ईंट।
कबीर अंतर प्रेम की, लगी न एको छींट ॥८॥
पंडित पोथी बाँधि के, दे सिरहाने सोय।
वह अच्छर इन में नहीं, हँसि दे भावै रोय ॥९॥
पंडित केरी पोथियाँ, ज्यौं तीतर को ज्ञान।
औरन सगुन बतावही, अपना फंद न जान ॥१०॥
पढ़े गुने सीखे सुने, मिटी न संसय सूल।
कह कबीर का से कहूँ, येही दुख का मूल ॥११॥
कबीर पढ़ना दूर करु, पुस्तक देहु बहाय।
बावन अच्छर सोधि के, सत्त नाम लौ लाय ॥१२॥
पढ़ना गुनना चातुरी, ये तो बात सहल।
काम दहन मन बसि करन, गगन चढ़न मुसकिल ॥१३॥
पंडित और मसालची, दोनों सूझै नाहिँ।
औरन को करैं चाँदना, आप अँधेरे माहिँ ॥१४॥
नहिँ कागद नहिँ लेखनी, नहिँ अच्छर है सोय।
पाँचहि पुस्तक छाड़ि कै, पंडित कहिये सोय ॥१५॥
धरती अम्बर ना हता, कौन था पंडित पास।
कौन महूरत थापिया, चाँद सूर आकास ॥१६॥
पंडित बोरौ पत्तरा, काजी छोड़ु कुरान।
वह तारीख बताइदे, थे न जमीं असमान ॥१७॥
बाम्हन गुरु है जगत का, करम भरम का खाहि।
उरझि पुरझि के मरि गया, चारो बेदौं माहिँ ॥१८॥
बाम्हन गदहा जगत का, तीरथ लादा जाय।
जजमान कहै मैं पुन किया, वह मिहनत का खाय ॥१९॥
बाम्हन तैं गदहा भला, आन देव तैं कुत्ता।
मुलना त मुरगा भला, सहर जगावै सुत्ता ॥२०॥

कबीर बाम्हन की कथा, सो चोरन की नाव ।
सब अंधे मिलि बैठिया, भावै तहँ लैजाव ॥२१॥
कबीर बाम्हन बूड़िया, जनेऊ केरे जोरि ।
लख चौरासी माँगि लइ, सतगुरु सेती तोरि ॥२२॥
कलि का बाम्हन मसूखरा, ताहि न दीजै दान ।
कुटुँब सहित नरकै चला, साथ लिया जजमान ॥२३॥

मिश्रित का अंग ।

साईं केरे बहुत गुन, लिखे जो हिरदे माहिँ ।
पिऊँ न पानी डरपता, मत वै धोये जाहिँ ॥१॥
सुपने में साईं मिले, सोवत लिया जगाय ।
आँखि न खोलूँ डरपता, मत सुपना ह्वै जाय ॥२॥
सोऊँ तो सुपने मिलूँ, जागूँ तो मन माहिँ ।
लोचन राते सुभ घड़ी, बिसरत कबहूँ नाहिँ ॥३॥
कबीर साथी सोइ किया, दुख सुख जाहि न कोय ।
हिलि मिलि कै सँग खेलई, कधी बिछोह न होय ॥४॥
यार बुलावै भाव से, मो पै गया न जाय ।
धन मैली पिउ ऊजला, लागि न सक्कूँ पाँय ॥५॥
तरवर तासु बिलंबिये, बारह मास फलंत ।
सीतल छाया सघन फल, पंछी केल करंत ॥६॥
तरवर सरवर संतजन, चौथे बरसै मेंह ।
परमारथ के कारने, चारो धारैं देह ॥७॥
नवन नवन बहु अंतरा, नवन नवन बहु बान ।
ये तीनोँ बहुतै नवैं, चीता चोर कमान ॥८॥
कबीर सुख को जाय था, आगे मिलिया दुक्ख ।
जाहु सुक्ख घर आपने, हम जानैं अरु दुक्ख ॥९॥

कबीर सीप समुद्र की, खारा जल नहिँ लेय।
पानी पावै स्वाँति का, सोभा सागर देय ॥१०॥
ऊँची जाति पपीहरा, पियै न नीचा नीर।
कै सुरपति[1] को याँचई, कै दुख सहै सरीर ॥११॥
पड़ा पपीहा सुरसरी[2], लगा बधिक का बान।
मुख मूँदे स्नुत गगन में, निकस गये योँ प्रान ॥१२॥
पपिहा पन को ना तजै, तजै तो तन बेकाज।
तन छूटे तो कछु नहीँ, पन छूटे है लाज ॥१३॥
चात्रिक[3] सुतहिँ पढ़ावही, आन नीर मत लेय।
मम कुल यही सुभाय है, स्वाँति बूँद चित देय ॥१४॥
जा के हिरदे गुरु बसैँ, सो जन कल्पै काहि।
एकै लहर समुद्र की, दुख दरिद्र सब जाहि ॥१५॥
प्रेम प्रीति से जो मिलै, ता से मिलिये धाय।
अंतर राखे जो मिलै, ता से मिलै बलाय ॥१६॥
हाथी अटका कीच में, काढ़ै कोइ समरत्थ।
कै निकसै बल आपने, कै धनी पसारै हत्थ ॥१७॥
भूप दुखी अवधू दुखी, दुखी रंक बिपरीत।
कह कबीर यह सब दुखी, सुखी संत मन जीत ॥१८॥
काँसे ऊपर बीजुली, परै अचानक आय।
ता तैँ निर्भय ठीकरा, सतगुरु दिया बताय ॥१९॥
लम्बा मारग दूर घर, बिकट पंथ बहु मार।
कह कबीर कस पाइये, दुर्लभ गुरु दीदार ॥२०॥
कबीर मैँ तो बैठि कै, सब से कहूँ पुकारि।
धरा[4] धरै सो धरि कुटै, अधर धरै सो तारि ॥२१॥
हेरत हेरत हे सखी, हेरत गया हिराय।
बुन्द समानी समुँद में, सो कित हेरी जाय ॥२२

(१) इन्द्र। (२) गंगा। (३) पपीहा। (४) पृथ्वी।

हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराय।
समुँद समाना बुंद में, सो कित हेरा जाय ॥२३॥
बुंद समानो समुँद में, सो जानै सब कोय।
समुँद समाना बुंद में, जानै बिरला कोय ॥२४॥
एक समाना सकल में, सकल समाना ताहि।
कबीर समाना बूझ में, जहाँ दूसरा नाहिं ॥२५॥
गुरू नहीं चेला नहीं, नहिं मुरीद नहिं पीर।
एक नहीं दूजा नहीं, बिलमे तहाँ कबीर ॥२६॥
बृच्छ जो ढूँढ़ै बीज को, बीज बृच्छ के माहिं।
जीव जो ढूँढ़ै पीव को, पीव जीव के माहिं ॥२७॥
आदि होत सब आप में, सकल होत ता माहिं।
ज्यौं तरवर के बीज में, डार पात फल छाहिं ॥२८॥
खुलि खेलो संसार में, बाँधि न सक्कै कोय।
घाट जगाती क्या करै, जो सिर बोझ न होय ॥२९॥
घाट जगाती धर्मराय, सब का झारा[1] लेय।
सत्तनाम जाने बिना, उलटि नरक में देय ॥३०॥
जब का माई जनमिया, कतहुँ न पाया सुक्ख।
डारी डारी मैं फिरौं, पात पात में दुक्ख ॥३१॥
कबीर मैं तो तब डरौं, जो मुझही में होय।
मीच बुढ़ापा आपदा, सब काहू में सोय ॥३२॥
सात दीप नौखंड में, तीन लोक ब्रह्मंड।
कह कबीर सब को लगै, देँह धरे का दंड ॥३३॥
देँह धरे का दंड है, सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगतै ज्ञान करि, अज्ञानी भुगतै रोय ॥३४॥
एक बस्तु के नाम बहु, लीजै बस्तु पिछानि।
नाम पच्छ नहिं कीजिये, सार तत्त ले जानि ॥३५॥

---

(१) तलाशी।

सब काहू का लीजिये, साचा सबद निहारि।
पच्छपात न कीजिये, कहै कबीर बिचारि ॥३६॥
देखन ही की बात है, कहने की कछु नाहिँ।
आदि अंत को मिलि रहा, हरिजन हरि ही माहिँ ॥३७॥
सबै हमारे एक हैं, जो सुमरै सत नाम।
बस्तु लही पहिचानि कै, बासन से क्या काम ॥३८॥
आछे दिन पाछे गये, गुरु से किया न हेत।
अब पछताये होत का, चिरियाँ चुग गइँ खेत ॥३९॥
कबीर दर दीवान जो, क्योंकर पावे दाद।
पहिले बुरा कमाइ कै, पाछे करै फरियाद ॥४०॥
कैान कसे अरु कैान कसावे, कैान जो लेइ छुड़ाय।
यह संसा जिव ह्वै रही, साधु कही समझाय ॥४१॥
काल कसै अरु कर्म कसावे, सतगुरु लेइ छुड़ाय।
कहै कबीर बिचारि कै, सुनौ संत चित लाय ॥४२॥
माटी मैं माटी मिलो, मिली पौन से पौन।
मैं तोहि बूझौं पंडिता, दो मैं मूवा कौन ॥४३
कुमति हती सो मिटि गई, मिटयो बाद हंकार।
दूनोँ का मरना भया, कहै कबीर बिचार ॥४४॥
जूआ चोरी मुखबिरी, ब्याज घूस पर नारि।
जो चाहै दीदार को, एती बस्तु निवारि ॥४५॥
करता दीखै कीरतन, ऊँचा करि के तुंड।
जानै बूझै कछु नहीँ, योँ ही आंधा रुंड ॥४६॥
मो मैं इतनी सक्ति कहँ, गाऔं गला पसार।
बंदे को इतनी घनी, पड़ा रहै दरबार ॥४७॥
रचनहार को चीन्हि ले, खाने को क्या रोय।
दिल मंदिर मैं पैठि करि, तानि पिछौरा सोय ॥४८॥

सब से भली मधूकरी, भाँति भाँति का नाज।
दावा काहू का नहीं, बिना बिलायत राज ॥४९॥
भौसागर जल विष भरा, मन नहिं बाँधै धीर।
सबद-सनेही पिउ मिला, उतरा पार कबीर ॥५०॥
हंसा बगुला एक रंग, मानसरोवर माहिं।
बगुला ढूँढ़ै माछरी, हंसा मोती खाहिं ॥५१॥
तन संदूक मन रतन है, चुपके दे हठ ताल।
गाहक बिना न खोलिये, पूँजी सबद रसाल ॥५२॥
हीरा गुरु का सबद है, हिरदे भीतर देख।
बाहर भीतर भरि रहा, ऐसा अगम अलेख ॥५३॥
कै खाना कै सोवना, और न कोई चीत।
सतगुरु सबद बिसारिया, आदि अंत का मीत ॥५४॥
याहि उदर के कारने, जग याच्यो निसि जाम।
स्वामीपन सिर पर चढ़्यौ, सर्यौ न एकौ काम ॥५५॥
परतिष्ठा का टोकरा, लीये डोलै साथ।
सत्त नाम जाना नहीं, जनम गँवाया बाद ॥५६॥
कलि का स्वामी लोभिया, मनसा रहा बँधाय।
रुपया देवै ब्याज पर, लेखा करत दिन जाय ॥५७॥
कलि का स्वामी लोभिया, पीतरि धरै खटाइ।
राज दुवारे यौं फिरै, ज्यौं हरियाई गाइ ॥५८॥
राज दुवारे साधुजन, तीनि वस्तु को जाय।
कै मीठा कै मान को, कै माया की चाय ॥५९॥
कबीर कलिजुग कठिन है, साधु न मानै कोय।
कामी क्रोधी मसखरा, तिन कौ आदर होय ॥६०॥
सतगुरु की साची कथा, कोई सुनहीं कान।
कलिजुग पूजा डिम्भ की, बाजारी कौ मान ॥६१॥

देखन को सब कोई भली, जैसा सीत का कोट।
देखत ही ढहि जायगा, बाँधि सकै नहिँ पोट ॥६२॥
पद गावै मन हरखि कै, साखी कहै अनन्द।
तत्त मूल नहिँ जानिया, गल मैं परिगा फंद ॥६३॥
नाचै गावै पद कहै, नाहीँ गुरु से हेत।
कह कबीर क्योँ नीपजै, बीज विहूना खेत ॥६४॥
चतुराई क्या कीजिये, जो नहिँ पदहिँ समाय।
कोटिक गुन सुवना पढ़ै, अंत बिलाई खाय ॥६५॥
ब्रह्महिँ तैँ जग ऊपजा, कहत सयाने लोग।
ताहि ब्रह्म के त्याग बिनु, जगत न त्यागन जोग ॥६६॥
ब्रह्म जगत का बीज है, जो नहिँ ता को त्याग।
जगत ब्रह्म मैं लीन है, कहहु कौन वैराग ॥६७॥
नेत नेत जेहिँ वेद कहि, जहाँ न मन ठहराय।
मन बानी की गमि नहीँ, ब्रह्म कहा किन आय ॥६८॥
एक कर्म है बोवना, उपजै बीज बहूत।
एक कर्म है भूँजना, उदय न अंकुर सूत ॥६९॥
चाँद सुरज निज किरनि को, त्याग कवन बिधि कीन।
जा की किरनी ताहि मैं, उपजि होत पुनि लीन ॥७०॥
जब दिल मिला दयाल से, फाँसी गई बिलाय।
मोहिँ भरोसा इष्ट का, बंदा नरक न जाय ॥७१॥
जब दिल मिला दयाल से, तब कछु अंतर नाहिँ।
पाला गलि पानी भया, यौँ हरिजन हरि माहिँ ॥७२॥
कबीर मोह पिनाक[१] जग, गुरु बिनु टूटत नाहिँ।
सुर नर मुनि तोरन लगे, छुवत अधिक गरुआहि ॥७३॥

---

(१) धनुष।

साधू ऐसा चाहिये, ज्यों मोती मैं आब।
उतरे तें फिरि नहिं चढ़ै, अनादर होइ रहाब ॥७४॥
मूरख लघु को गरु कहैं, लघु गरु कहैं बनाय।
यह अबिचारी देखि कै, कहत कबीर लजाय ॥७५॥
कबीर निगुरे नरन को, संसय कबहुँ न जाय।
संसय छूटै गुरु कृपा, तासु बिमुख जहँडाय[1] ॥७६॥
कबीर जो गुरु-बेमुखी, (तेहि) ठौर न तीनउँ लोक।
चौरासी भरमत फिरै, भोगै नाना सोक ॥७७॥
गुरू झरोखे बैठि के, सब का मुजरा लेइ।
जैसी जा की चाकरी, तैसा ता को देइ ॥७८॥
नाम रतन धन संत पहँ, खान खुली घट माहिँ।
सँतमैंत ही देत हौं, गाहक कोई नाहिँ ॥७९॥

॥ इति ॥

(1) ठगाय।

बेलवेडियर प्रेस, कटरा, प्रयाग की पुस्तकें

संतबानी पुस्तकमाला

[हर महात्मा का जीवन-चरित्र उनकी बानी के आदि में दिया है]

पुस्तक	मूल्य
कबीर साहिब का बीजक	॥।)
कबीर साहिब का साखी-संग्रह	१=)
कबीर साहिब की शब्दावली, पहला भाग ...	॥।)
कबीर साहिब की शब्दावली दूसरा भाग	॥।)
कबीर साहिब की शब्दावली, तीसरा भाग	।≈)
कबीर साहिब की शब्दावली, चौथा भाग	≡)
कबीर साहिब की ज्ञान-गुदड़ी, रेख़ते और झूलने	।=)
कबीर साहिब की अखरावती	≈)
धनी धरमदास जी की शब्दावली	॥-)
तुलसी साहिब (हाथरस वाले) की शब्दावली भाग १ ...	१=)
तुलसी साहिब दूसरा भाग पद्मसागर ग्रंथ सहित ...	१=)
तुलसी साहिब का रत्नसागर	१।-)
तुलसी साहिब का घट रामायण पहला भाग	१॥)
तुलसी साहिब का घट रामायण दूसरा भाग	१॥)
गुरु नानक की प्राण-संगली सटिप्पण पहला भाग ...	१॥)
गुरु नानक की प्राण-संगली दूसरा भाग	१॥)
दादू दयाल की बानी भाग १ "साखी"	१॥)
दादू दयाल की बानी भाग २ "शब्द"	१)
सुन्दर बिलास	१-)
पलटू साहिब भाग१—कुंडलियाँ	॥।)
पलटू साहिब भाग २—रेख़ते, झूलने, अरिल, कवित्त सवैया ...	॥।)
पलटू साहिब भाग ३—भजन और साखियाँ	॥।)
जगजीवन साहिब की बानी, पहला भाग	॥।-)
जगजीवन साहिब की बानी दूसरा भाग	॥।-)
दूलन दास जी की बानी, ...	।)॥
चरनदास जी की बानी, पहला भाग	॥।-)
चरनदास जी की बानी, दूसरा भाग	॥।-)

गरीबदास जी की बानी	...	...	१।=)
रैदास जी की बानी	...	...	॥)
दरिया साहिब (बिहार) का दरिया सागर	...	...	।=)॥
दरिया साहिब के चुने हुए पद और साखी	...	...	।-)
दरिया साहिब (मारवाड़ वाले) की बानी	...	...	।=)
भीखा साहिब की शब्दावली	...	...	॥=)॥
गुलाल साहिब की बानी	...	...	॥।=)
बाबा मलूकदास जी की बानी	...	...	।)॥
गुसाईं तुलसीदास जी की बारहमासी	...	...	-)
यारी साहिब की रत्नावली	...	...	=)
बुल्ला साहिब का शब्दसार	...	...	।)
केशवदास जी की अमीघूँट	...	...	-)॥
धरनी दास जी की बानी	...	...	।=)
मीरा बाई की शब्दावली	...	...	॥)
सहजोबाई का सहज-प्रकाश	...	...	।=)॥
दया बाई की बानी	...	...	।)
संतबानी संग्रह, भाग १ [साखी]	...	...	१॥)
[प्रत्येक महात्माओं के संक्षिप्त जीवन चरित्र सहित]			
संतबानी संग्रह, भाग २ [शब्द]	...	...	१॥)
[ऐसे महात्माओं के संक्षिप्त जीवन चरित्र सहित जो भाग १ में नहीं हैं]			
		कुल	३४-)
अहिल्या बाई	...	...	=)

दाम में डाक महसूल व रजिस्टरी शामिल नहीं है वह इसके ऊपर लिया जायगा—

मिलने का पता—

मैनेजर,

बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।